आकाश की रंगीनियां

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
रामनगर, नई दिल्ली-110055

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-110055
शोरूम : 4/16-बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

शाखाएं :

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-226001
285/J, विपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-700012
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-500195
3, गांधी सागर ईस्ट, नागपुर-440002
खजांची रोड, पटना-800004
माई हीरां गेट, जालन्धर-144008
152, अन्ना सलाए, मद्रास-600002
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेस कोर्स रोड, बंगलौर-560009
ब्लैकी हाउस, 103/5, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई-400001
613-7, एम० जी० रोड, एर्नाकुलम कोचीन-682035
पान बाजार, गोहाटी-781001

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा प्रकाशित एवं राजेन्द्र रवीन्द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि० रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित।

विषय सूची

पहला अध्याय

यह वायवीय प्रदेश

हमारी पृथ्वी एक गोला (ग्लोब) है जो व्यास मे लगभग आठ हजार मील है। अन्दर से अर्थात् भूगर्भ एक गरम पिघला हुआ पदार्थ है। ऊपरी पृष्ठ कुछ दर्जन मील गहरी पपडी का बना है। यदि इसकी तुलना एक अण्डे से की जाए तो यह उस अण्डे के छिलके (खोल) से भी पतली होगी। इस पृथ्वी के पृष्ठ का तीन चौथाई भाग जल है। समुद्रों का सम्पूर्ण जल तथा जमीन ऊपर से वायु के समुद्र से ढके हैं, जिसे 'वायुमण्डल' कहा जाता है।

इस वायवीय राज्य में हम बसते है, तथा कार्य करते हैं, जैसे कि मछलियाँ समुद्र मे इधर-उधर घूमती हैं। हमारे कार्य इस वायुमण्डल पर आश्रित है और हमारा तथा अन्य प्रत्येक जीवित वस्तु का जीवन इसी पर निर्भर है। ये वस्तुऐं केवल वायु की उपस्थिति ही नही चाहती, अपितु इन्हे वायु द्वारा निर्मित कुछ विशेष अवस्थाओं की भी अशतः आवश्यकता है, जिनमें प्राणी फल-फूल सकें तथा अपने-अपने कार्य सम्पादन कर सकें। यदि वायुमण्डल न होता, तो पृथ्वी पर जीवन न होता और मौसम, बादल तथा रंगबिरंगी सन्ध्या के सुन्दर दृश्य नजर न आते। निस्तब्धता को भंग करने वाली आवाज न होती। सूर्य की तेज गरमी तथा अन्तरिक्ष की भीषण शीतलता से पृथ्वी जहाँ एक तरफ से भुन जाती, वही दूसरी तरफ जम जाती। इसके पृष्ठ पर उल्कापिण्डों की मार से दाग अर्थात् छोटे-छोटे गड्ढे पड़ गये होते।

जैसा कि हम जानते हैं कि वायुमण्डल पृथ्वी की सब वस्तुओं पर छा रहा है। चाहे हम गहरी से गहरी खान मे उतर जायें या ऊँचे से ऊँचे पहाड़ पर चढ जायें, हम इसकी सत्ता अवश्य ही पाते हैं। ध्रुवो पर और भूमध्यरेखा पर भी वायुमण्डल ही छा रहा है। ऐसे बर्तन जोकि हमें खाली प्रतीत होते है वास्तव मे वायुमण्डल से भरे हुए होते हैं, जब तक कि किसी निर्वात पम्प द्वारा सारी वायु निकाल कर उनका मुँह बन्द न कर दिया गया हो। हमारा समस्त वायुमण्डल उत्तरोत्तर विरल होता हुआ सैकड़ों मील तक ऊपर चला गया है। वहाँ भी वह निश्चित रूप से समाप्त नही हो जाता, अपितु उत्तरोत्तर क्षीण होता जाता है और निश्चित रूप से कोई ऐसा बिन्दु नहीं है जिस पर केवल शून्य दाब वाला अन्तरिक्ष हो।

कभी-कभी हम वायु को बिना भार के समझ लेते हैं। परन्तु हमारा यह वायुमण्डल वास्तव मे भाररहित नही है। यदि तीस फुट वर्ग की और तीस फुट ऊँची टंकी

की वायु तोली जाय तो उसका एक टन भार होगा। सब मिलाकर, इस पृथ्वी के प्रत्येक निवासी के लिए पचास लाख अरब टन वायु इस वायुमण्डल में है। अगर दबाकर इस्पात के घनत्व का कर दिया जाय तो एक ४६ इंच मोटी ऐसी प्लेट बने जोकि सारी पृथ्वी पर मढ़ी जा सकेगी। पृथ्वी के प्रत्येक वर्ग इंच पृष्ठ पर ... का दाब, पन्द्रह पौण्ड के बराबर होता है। वायु की वह मात्रा जो हम अपने ... लिये फिरते हैं एक हजार पौण्ड से भी अधिक भार रखती है।

तथापि, हमारे शरीर पर दाब डालती हुई वायु केवल एक गतिहीन वस्तु नहीं है। वायु की अल्पमात्रा भी भारी संख्या में छोटे कणों की बनी होती है, जिन्हें अणु अथवा मौलीक्यूल कहते हैं। ये अणु विलक्षण गति से इधर-उधर उछल-कूद मचाते हुए एक-दूसरे से टकराकर पृथक् हो जाते हैं और पुन. टक्कर खाते हैं। वायु के प्रत्येक घन इंच में लगभग चार सौ नब्बे अरब अरब अणु होते हैं, और हम सांस लेते ... बार लगभग दस हजार अरब अरब अणुओं को अपने शरीर में ले जाते हैं। साधारण तापक्रम पर एक औसत अणु जैट वायुयान की गति से चलता है। परन्तु वह अणु एक टेढ़मेढ़े मार्ग से चलता है और एक इंच के कुछ दस लाखवें भाग की दूरी को तय करके अपने समीपस्थ अणुओं से टकराता है। वास्तव में जिसे हम वायुमण्डल दाब कहते हैं वह केवल अणुओं की किसी पृष्ठ पर (जैसे कि हमारे हाथ की त्वचा पर) लगने वाली टक्करों का कुल योग होता है। इन टक्करों अथवा धक्कों का प्रभाव ही लगभग पन्द्रह पाउण्ड हमारे शरीर के प्रत्येक वर्ग इंच पर पड़ रहा है।

वायु के सब अणु समान नहीं होते। वास्तव में यह अदृश्य माध्यम विभिन्न प्रकार के तत्त्वों के अणुओं का एक मिश्रण है। इनमें से कुछ एक अणु प्रचुर संख्या में होते हैं और कुछ बहुत ही कम। इनमें से कुछ क्रियाशील होते हैं और दूसरे निष्क्रिय। कुछ पर्याप्त सान्द्रता में विषैले होते हैं। कुछ-एक ऐसे हैं जोकि हमारे लिये आवश्यक होते हैं और शेष निरपेक्ष अथवा उदासीन रूप से वहाँ उपस्थित रहते हैं। हवाओं के चलने से अथवा अणुओं की विलक्षण गतियों के कारण किसी भी स्थान पर वायु लगभग वैसी ही है जैसी कि कहीं और किसी स्थान पर हो सकती है। जलवाष्पों के सिवा जो अपेक्षाकृत कम ऊंचाइयों पर मौसम के अनुसार भिन्न-भिन्न मात्राओं में उपस्थित रहते हैं, वायु का अठत्तर प्रतिशत से कुछ ज्यादा भाग नाइट्रोजन नामक तत्त्व का होता है। ऑक्सीजन कुल का लगभग इक्कीस प्रतिशत होता है जब कि कार्बन डाइऑक्साइड, ऑर्गन, नियॉन, क्रिप्टोन, जिनॉन, हीलियम, रेडोन तथा कुछ अन्य तत्त्व, जोकि मानवीय क्रियाओं के कारण बनते हैं, कुल मिलाकर लगभग एक प्रतिशत भाग बनाते हैं।

अन्तहीन लगातार के चक्रों द्वारा पहली तीन गैसें—नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड—अस्थिर जैव संसार तथा अजैव प्रकृति की टिकाऊ साम्यावस्था के बीच घूमती रहती हैं। विविध प्रक्रियाओं द्वारा वे एक शानदार साझेदारी में शामिल होती हैं और इस प्रकार यह संसार का चक्कर चलता रहता है। सबसे अधिक पाया जाने वाला तत्त्व नाइट्रोजन, मनुष्य के लिए एक पहेली है। इसकी अधिकता के बावजूद

हम इसकी कमी अनुभव करते हैं। रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय नाइट्रोजन अन्य तत्वों के साथ विशेष अवस्थाओं में ही मिल पाती है। फिर भी इस ग्रह पृथ्वी पर सब जैव वस्तुएँ, जिनमें जीवधारी तथा वनस्पतियां भी सम्मिलित हैं, इसको अपने भोजन में अपेक्षा रखती हैं। चूंकि इस तत्व को खाद्य पदार्थ में मिलाना बहुत कठिन होता है, इसलिए मनुष्य का मस्तिष्क एवं कठोर परिश्रम अपेक्षाकृत कम मात्रा में मिट्टी में बन्दीकृत इस तत्त्व की रक्षा करने में लगा है।

प्रकृति में नाइट्रोजन शक्तिशाली तड़ित् की सहायता से सक्रियता प्राप्त करता है तथा भूमि और जल में उपस्थित नन्हें जीवाणुओं द्वारा उसे बन्दी बनाया जाता है। बहुत ऊँचाई पर वायुमण्डल में तड़ित् की कुछ मात्रा नाइट्रोजन की ऑक्सीजन के साथ मिलती है जिससे नाइट्रोजन के ऑक्साइड यौगिक बनते हैं और जलवाष्पों की हाइड्रोजन के साथ नाइट्रोजन के मिलने से अमोनिया बनती है। ये यौगिक वर्षा द्वारा घुल कर भूमि पर आ गिरते हैं। इस प्रकार प्रति एकड़ भूमि के ऊपर एक से नौ पौण्ड तक ये यौगिक हर साल गिरते हैं। ये यौगिक भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। नन्हें जीवाणु, जिन्हें नाइट्रोजन स्थिरीकारक (नाइट्रोजन फिक्सर्स) और नाइट्रीकारक (नाइट्रीफायर) कहा जाता है, स्वतन्त्र नाइट्रोजन को जैव यौगिकों में बन्दी बनाते हैं। ये जैव यौगिक, जीवधारियों तथा वनस्पतियों के आहार के लिये उपयुक्त है। कुछ एक ऐसे जीव, जिन्हे डिनाइट्रीकारक (डिनाइट्रीफायर) कहते हैं, मृत जीवों को गलासड़ा देते हैं और उनमें उपस्थित नाइट्रोजन को वायु में फिर से छोड़ देते हैं। वायु से वह नाइट्रोजन फिर प्राप्त की जा सकती है।

नाइट्रोजन के विपरीत ऑक्सीजन एक बहुत ही सक्रिय गैस है। धातुओं पर जग लगाने की क्रिया का उत्तरदायित्व इसी पर है। चाकू से काटने के कुछ ही देर बाद सेब के अन्दर का भाग भूरा इसी कारण हो जाता है और जन्मदिन पर जलाई जाने वाली मोमबत्ती को यही जलाये रखती है। "जीवन की आग" को इसी के द्वारा जलता हुआ रखा जा सकता है। जिस प्रकार किसी स्टोव को जलाने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है इसी प्रकार हमारे शरीर को ऑक्सीजन अवश्य लेनी होती है जिससे कि हमारे भोजन में उपस्थित कार्बन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन को पानी, यूरिया, तथा कार्बन डाइऑक्साइड में "जलाया" या परिवर्तित किया जा सके।

कार्बन डाइऑक्साइड की कहानी कुछ सीमा तक ऑक्सीजन की कहानी के विपरीत है। हरी वनस्पतियां सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में वायु मे से कार्बन डाइऑक्साइड को लेती हैं और एक चामत्कारिक प्रक्रिया द्वारा, जिसे प्रकाश संश्लेषण (फोटोसिन्थेसिस) कहते हैं, ऑक्सीजन को छोड़ती है। इस क्रिया में कार्बन काष्ठ निर्माण में प्रयुक्त हो जाता है। जब वनस्पतियाँ गलती सड़ती है या जलाई जाती हैं तो कार्बन फिर कार्बन डाइऑक्साइड में बदल जाता है जोकि वायु में जा [illegible]। अनुमानों से संकेत मिलता है कि वायवीय कार्बन डाइऑक्साइड के एक पूर्ण

से तीन वर्ष तक लग जाते हैं। ऑक्सीजन अधिक होने से जैव पदार्थों के संसार में अपना उपरोक्त चक्कर तीन हजार वर्षों मे पूरा करती है। परन्तु कम क्रियाशील नाइट्रोजन इस सश्लेषण के जाल मे बहुत देर मे फंसती है, प्रायः दस करोड़ वर्षों में एक बार।

कार्बन डाइऑक्साइड ज्वालामुखी पहाड़ों की क्रिया द्वारा भी लगातार हवा में मिल रही है। इसी प्रकार से कुछ खनिजयुक्त स्रोतों से भी कार्बन डाइऑक्साइड हवा में मिलती रहती है। इसके अलावा जैव पदार्थों के गलने सड़ने, विभिन्न प्रकार के ईंधनो के ज्वलन से व मनुष्यों और अन्य जानवरो के श्वसन से भी कार्बन डाइऑक्साइड वायु में मिलती रहती है। इसी प्रकार हवा में से इसकी कुछ मात्रा कुछ चट्टानों द्वारा और समुद्र के पानी द्वारा निकाली भी जा रही है। इस समय वायु की अपेक्षा समुद्र में पचास गुना अधिक कार्बन डाइऑक्साइड घुलित अवस्था में है। वायु में इसकी मात्रा ०·०३ प्रतिशत के करीब होती है। गत अर्ध शताब्दी से कार्बन डाइऑक्साइड की उत्पत्ति ईंधन के ज्वलन से या अन्य औद्योगिक कार्यों द्वारा बढ़ गयी है इसलिये वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की कुछ अधिक मात्रा पायी जाती है। इसके परिणामस्वरूप कुछ वैज्ञानिकों को संसार का तापक्रम स्पष्ट रूप में बढा हुआ प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि कार्बन डाइऑक्साइड भूमि पर आने वाली सूर्य की कुछ ऊर्जा को अपने में रोक लेती है, इससे वायुमण्डल का तापक्रम कुछ बढ़ जाता है।

अदृश्य गैसों अथवा वाष्पो के रूप में जल भूमि के आसपास के वायुमण्डल में सदा उपस्थित रहता है। इसकी मात्रा बदलती रहती है क्योंकि किसी भी तापक्रम पर वायु में जलवाष्प किसी निश्चित मात्रा तक ही रह सकते हैं, उससे अधिक नही। सामान्यतया जल की यह मात्रा केवल दस दिन की सप्लाई के लिए ही है इसलिए यदि समुद्र, नदी, नालो, झीलो इत्यादि के पृष्ठ पर से वाष्पीकरण होनास माप्त हो जाय तो सारी वनस्पतियां और जीव अर्थात् सम्पूर्ण जीवन शीघ्र ही प्यास के मारे समाप्त हो जायगा। जब वायुमण्डल का तापक्रम अधिक होता है, तो पानी के वाष्पों की अधिक मात्रा उसमें रहती है, विशेषकर उस अवस्था में जब कि पानी का कोई स्रोत समीप हो। परन्तु यदि तापक्रम गिर जाय तो वायु का जलीय बोझ अवश्य ही कम हो जायेगा। पृथक् हुआ यह जल वर्षा, ओले, बर्फ, ओस या कोहरे का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार से मौसम अधिकतर जलवाष्पो की मात्रा के उतार-चढ़ाव और उनकी गतिविधियो से बनता है।

सूर्य से प्राप्त होने वाले ताप तथा प्रकाश से हम भलीभाँति परिचित है। परन्तु इनके अतिरिक्त सूर्य कुछ अन्य विशेष प्रकार के विकिरण भी छोड़ता है। सूर्य के अल्ट्रा-वायलेट विकिरण का मनुष्य पर घातक प्रभाव होता, यदि वायुमण्डल एक निस्यन्दक (छन्ना) के रूप में काम न करता। इस निस्यन्दक (छन्ना) में से साधारणतया इतनी ही ये किरणें निकल पाती है जिससे मनुष्य के शरीर का सुन्दर रग बना रहता है। यह वायुमण्डल एक ढाल का काम भी करता है और हमें ओलो, नन्हे उल्कापिण्डो, या भेदकर प्रवेश करने वाली प्राथमिक कास्मिक किरणो से बचाता है। वायु को एक

अन्य दृष्टि से भी देखा जा सकता है। यह हमारे लिए एक मुख्य प्राकृतिक स्रोत है। पत्थर का कोयला और पैट्रोलियम, जिन्हें हम भूमि से प्राप्त करते है, अधिकतर कार्बन ही है, जोकि आदिकाल में वनस्पतियों द्वारा वायु से खींचा किया गया था। यदि हम इन पदार्थों को वायु की ऑक्सीजन से न जला पाते तो इनका प्रयोग वन्द हो गया होता। इसी प्रकार से हम धात्विक लोहा, ताम्बा, जस्त या अन्य सामान्य धातुओं का निष्कर्पण न कर सकते यदि हमारे पास प्रगलन भट्टियों में जलाने के लिए वायवीय ऑक्सीजन न होती।

स्पष्ट है कि वायुमण्डल के कारण होने वाली अनेक घटनाओं के बिना हम जीवित नहीं रह सकते। यदि हम किसी भी तरह वायुमण्डल की अनुपस्थिति में रह सकने की कल्पना करें तो हम अपने चारों ओर के दृश्यों को एकदम वदला हुआ पाते। आसमान निरन्तर काला होता और पृथ्वी पर स्थित पदार्थ या तो सूर्य द्वारा बहुत तेजी से प्रदीप्त होते या काली छाया में छिपे रहते क्योंकि पृथ्वी का यह गैसीय खोल सूर्य के प्रकाश को इधर-उधर छितरा हमारे सामने तरह-तरह के दृश्य पैदा करता है, जैसे आसमान का गहरा नीला रंग, नये प्राण फूंकने वाले उपाकाल तथा सन्ध्याकाल, ध्रुवीय ज्योतिया (आरोरा) तथा प्रकृति के अन्य भव्य दृश्य। वायुमण्डल की उपस्थिति के विना भयानक शान्ति होती। वायु के नन्हें अणु आगे-पीछे फुदक कर चलते हुए और एक दूसरे के साथ लगने वाली टक्करों से तेजी पकड़ कर हमारे कान के पर्दों पर प्रहार करते हुए इस बात की घोपणा करते है कि वायु में गति पैदा हो गई है। वायु में गति पैदा करने वाली वस्तु चाहे वायुयान का प्रोपेलर हो, या चोट मारने वाला हथौडा हो, या वायलिन की तार पर उत्पन्न हुआ कोई स्वर हो, ध्वनि के प्रसार का तन्त्र एक ही है।

आसमान के सौन्दर्य से कोई व्यक्ति आनन्द-विभोर होता हो, या न होता हो, किसी व्यक्ति की जीविका मौसम की अवस्थाओ पर निर्भर करती हो या न करती हो, या कोई व्यक्ति किसी बड़े शहर में रहता हो या न रहता हो किन्तु वह उसी तरह वायवीय घटनाओं से प्रभावित हुए विना नही रह सकता, जैसे कि गुफा में रहने वाला आदमी। कार्य करने की हमारी क्षमता, भार उठाकर किसी हवाई जहाज के उड़ने की क्षमता और वेसवाल की गिरने के समय वक्ररेखा वनाने की क्षमता, किसी भी गरम और आर्द्र दिन में तथा ठण्डे और शुष्क दिन में भिन्न भिन्न होगी। बहुत से स्थानों में वायु-प्रदूपण एक ऐसी समस्या है जिसके हल की जरूरत है, फिर भी गैसीय पदार्थों के नियन्त्रण के लिए बाध्य होने की पर्याप्त प्रेरणा जगने से पहले ही सम्भवतः यह स्थिति और बिगड़ जायेगी। वायुमण्डल जहाँ एक व्यावसायिक मार्ग है वहाँ वह युद्ध के लिए क्षैतिज तथा ऊर्ध्वाधर दिशाओं में एक अत्यन्त लम्बा-चौड़ा संभावित युद्धस्थल भी है। भविष्य में सम्भवतः इसी युद्ध-स्थल में बहुत तीव्र गति वाली ऐसी मशीनों द्वारा युद्ध होगा, जिन्हें मानव भूमि पर वैठे-वैठे [illegible] इसके स्थान पर यह वायुमण्डल ऐसे युद्ध का माध्यम भी वन सकेगा जिसमें

विभिन्न प्रकार की लड़ाई होगी। उस युद्ध में तात्कालिक मौत और विनाश तो नहीं होगा परन्तु जो नाश होगा उसमें पूर्ण रूप से सफाया हो जायेगा। अदृश्य रेडियो धर्मिता वायुमण्डल में इस तरह से फैल जायेगी कि आगे आने वाली सब सन्तानें राक्षस जैसी होंगी। इसके फलस्वरूप अन्त में मनुष्य जाति ही समाप्त हो जायेगी। निर्गन्ध, नीरग और तुलनात्मक दृष्टि से सस्ती कुछ ऐसी गैसें ज्ञात हैं जो इतनी घातक हैं कि त्वचा के साथ उनका स्पर्श मात्र घातक है। ऐसे भी यौगिक बनाये गये हैं जोकि मौत के घाट तो नहीं उतारते परन्तु सदा के लिए रोगी बना देते हैं। और कुछ समय के लिए मनुष्य के अन्दर प्रतिरोध की शक्ति को समाप्त कर देते हैं। रोगों के ऐसे जीवाणु वायु द्वारा फैलाए जा सकते हैं जोकि मनुष्यों को समाप्त कर देंगे या लाखों भेड़-बकरियों को मौत के घाट उतार देंगे। इससे मनुष्य को महान् हानि होगी और लोगों को मांस, ऊन और चमड़ा न मिल पायेगा। ऐसे बीजाणु (स्पोर्स) वायु द्वारा फैलाये जा सकते हैं जो गेहू, चावल, मक्का, ज्वार और राई का नाश करके मनुष्य के लिए आवश्यक रोटी का स्रोत ही समाप्त कर दें। यह भी सम्भव है कि आसमान में उड़ते हुए एक बादल में से फसल को मुरझाने वाली, लोगों को रोगी बनाने वाली, पशुओं के लिए जहरीली या जल सप्लाई का प्रदूषण करने वाली, कोई हानिकारक वस्तु नीचे आ जाये।

इसके विपरीत एक सुखद बात यह है कि मौसम और ऋतु बदले जा सकेंगे। भविष्य में न केवल मौसम का पूर्वानुमान अधिक यथार्थ रूप में किया जा सकेगा अपितु कई प्रकार के मौसमों पर कृत्रिम रूप से नियन्त्रण भी सभव होगा एवं वर्षा की जा सकेगी, ओलों को रोका जा सकेगा, और भीषण तूफान को कम किया जा सकेगा। जब इस प्रकार के विकास को भलीभाति पूर्ण कर लिया जायेगा; तो आर्थिक, मनोरंजन यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय विषयो पर भी इसका प्रभाव होगा। यदि भीषण तूफानों से सम्पत्ति तथा जीवन को होने वाली हानि को कम किया जा सके तो यह मनुष्य के लिये बहुत उपयोगी होगा। कृत्रिम वर्षा बरसाकर मरुस्थलों को फिर से हरे-भरे खेतों में बदला जा सकेगा।

दूसरा अध्याय

प्रारम्भ

हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल का निर्माण सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके पश्चात् होने वाली भूगर्भीय घटनाओं से हुआ है। इन घटनाओं का प्रारम्भ बहुत प्राचीन काल में हुआ था, और वर्तमान में भी ये लगातार जारी है। वायवीय उत्पत्ति के रहस्यों की व्याख्या करने के लिए हमें उन तथ्यों को ध्यान में लाना होगा जिन्हें आज भी हम आकाश में दिखाई देने वाले तारों और अपने नीचे दबी हुई चट्टानों में पाते है। हमें अवश्य ही सर्वप्रथम अपनी पृथ्वी तथा सम्पूर्ण विश्व की वर्तमान परिस्थितियों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना पड़ेगा। जैसा कि अब तक ज्ञात हो सका है, गैसों के अपने *विशिष्ट गिलाफ वाली हमारी यह पृथ्वी सम्पूर्ण विश्व में अद्वितीय है तथापि हमारी* पृथ्वी जैसे पिण्ड बहुत दुर्लभ नही है।

हमारी पृथ्वी जो एक ग्रह कहलाती है, के चारो ओर चन्द्रमा परिक्रमा करता है, जबकि यह पृथ्वी आठ अन्य मुख्य ग्रहों और बहुत से गौण ग्रहों के साथ एक सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाती है। हमारा सूर्य स्वतः अनेक अरब दूसरे सूर्यो के साथ परिक्रमा करता है; सम्भवतः इनमे से बहुत से सूर्य के चारो ओर घूमने वाले ग्रह भी है। सूर्यो (जो वास्तव मे तारे हैं) और ग्रहो के इस महामण्डल को आकाशगगा (गलेक्सी) कहते है। हमारी आकाशगगा अन्तरिक्ष मे ठीक उसी प्रकार से गति करती है जिस प्रकार ग्रीष्मकालीन वायु मे शहद की मक्खियो का झुण्ड। हमारी आकाशगंगा कम से कम एक अरब आकाशगगाओ मे से एक है, जिनसे कि हमारा विश्व बना है। हमारे सूर्य से संबधित ग्रहो मे से केवल चार ही हमारी पृथ्वी से छोटे है। सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति (जुपिटर) व्यास मे पृथ्वी से ग्यारह गुना बड़ा है। हमारा सूर्य एक औसत साइज का तारा है फिर भी यह पृथ्वी से तीन लाख बत्तीस हजार गुना भारी है और सब आकाश गगाएँ हमारी आकाशगगा के औसत परिमाण की है। ये सब आकाशगगाएँ एक रहस्यमय ढंग से एक दूसरे से दूर भागती हुई प्रतीत होती है, उसी प्रकार जैसे कि 'टैग' (आंख मिचौनी की तरह का एक बच्चों का खेल) में बच्चे एक दूसरे से दूर भागते है। सक्षेप मे यह कह सकते हैं कि यह विश्व फैलता हुआ प्रतीत होता है।

पृथ्वी, सभी तारे तथा आकाश गंगाओ का महान् लश्कर सभी बानवे तत्त्वों से निर्मित है। सभी अन्तरिक्ष पिण्डो मे प्रत्येक तत्त्व की समान मात्राएं उपस्थित नही होती। यदि सम्पूर्ण विश्व को ध्यान में रक्खा जाये तो उसमें नब्बे प्रतिशत हाइड्रोजन, नौ प्रतिशत हीलियम उपस्थित है। ये दोनो ही बहुत हल्की गैसे है। कार्बन, -
तथा ऑक्सीजन तत्त्व बाहुल्यक्रम मे इनके बाद है। धात्विक तत्त्व विशेषत

सिलीकॉन, मैगनीशियम, कैल्शियम, एल्यूमीनियम, सोडियम तथा पोटाशियम जो पृथ्वी का बड़ा भाग बनाते हैं, अन्तरिक्ष में प्राय. दुर्लभ हैं। भारी तत्त्व जैसे सोना, प्लाटिनम, यूरेनियम तथा थोरियम तो बहुत ही दुर्लभ हैं। चूंकि हाइड्रोजन तथा हीलियम खास मात्रा मे न तो पृथ्वी में मिलती हैं और न इसके वायुमण्डल में है इसलिए हमारी पृथ्वी अवश्य ही विकास के अनेक चरणों से गुजर चुकी है।

हमारी पृथ्वी सम्भवत. हाइड्रोजन तथा हीलियम के गैसीय मिश्रण में तैर रहे ठोस कणों के एकत्रित होने से बनी थी। यदि इसका आकार वर्तमान आकार से कई गुना अधिक होता तो इसके गुरुत्वाकर्षण का क्षेत्र इतना पर्याप्त होता कि वह उन गैसों तथा कई अन्य गैसो को पर्याप्त मात्रा में अपने वायुमण्डल में रख सकती थी। हमारी पृथ्वी से बडे ग्रहो बृहस्पति (जुपिटर) तथा शनि (सैटर्न) की अवस्था में ऐसा ही हुआ था। चट्टानो से बने उनके क्रोड़, जोकि उनके सम्पूर्ण भार के दो प्रतिशत के लग-भग है, *जमे हुए जल, मिथेन तथा अमोनिया से ढके हैं, जिनका भार सम्पूर्ण* का आठ प्रतिशत है। शेष अधिक सम्पीडित हाइड्रोजन तथा हीलियम गैस हैं। पृथ्वी चूँकि सूर्य के अधिक पास तथा छोटी थी, इसका गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र कम था और इस पर ऊँचे तापक्रमो का प्रभाव हुआ। उक्त अवस्थाओं ने इस नवजात पृथ्वी के विकास में अवश्य ही महत्त्वपूर्ण योगदान किया होगा।

अन्तरिक्ष में ताप का विकिरण करने के कारण पृथ्वीतल का तापक्रम इतना ऊँचा कभी नहीं था कि वह इसमें उपस्थित चट्टानों को पिघला सके। फिर भी तापक्रम आजकल के तापक्रम की अपेक्षा बहुत ऊँचा था। जैसा कि पृथ्वी की उत्पत्ति के संबंध में धारणा है, उस समय आद्य वायुमण्डल हाइड्रोजन, हीलियम, नाइट्रोजन, अमोनिया तथा मिथेन का मिश्रण था। उसमें हाइड्रोजन तथा ब्रोमीन, हाइड्रोजन और क्लोरीन, हाइड्रोजन और फ्लोरीन एव हाइड्रोजन और सल्फर के यौगिक भी उपस्थित थे निस्सन्देह यह वायुमण्डल मानव के लिए न केवल अस्वास्थ्यप्रद अपितु खतरनाक था। उस समय के ऊँचे तापक्रम के कारण इन गैसो के अणुओ का वेग अधिक था इसलिए ये गैसें शीघ्र ही लुप्त हो गईं।

गैसों का यह खोल त्यागने के बाद यह गरम-गरम पृथ्वी उत्तरोत्तर ताप भी छोड़ती गई। यद्यपि हम यह नहीं जानते कि उस समय ऐसे विस्फोट हुए जो ज्वालामुखियों की श्रेणी में आते हैं, फिर भी यह निश्चित है कि विस्फोटों की क्रिया बड़े पैमाने पर जारी थी। ऐसा सम्भव है कि पृथ्वी में से निकलती हुई वे गैसे ज्वालामुखी पहाड़ से निकलने वाली गैसों से मिलती-जुलती थीं। उदाहरणार्थ हाल के वर्षों मे, हवाई टापू में स्थित हेलमाऊमाऊ ज्वालामुखी से निकलती हुई गैसो का औसत सगठन आयतन के अनुसार अडसठ प्रतिशत जल वाष्प, तेरह प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड तथा आठ प्रतिशत नाइट्रोजन था। शेष भाग गन्धकीय वाष्पों का था। आजकल उसमें स्वतन्त्र ऑक्सीजन की कुछ भी मात्रा नही निकलती है और न उस समय थी। इ

१ के प्रथम चरणो में ये गैसें प्रारम्भिक गैसों की तरह अन्तरिक्ष में लुप्त हो ग

होंगी। जैसे पृथ्वी ठंडी होती गई, गैसों का यह लुप्त होना कम होता गया और फिर बिलकुल बन्द हो गया। जलवाष्प द्रवित होने प्रारम्भ हुए और इससे पृथ्वी पर बाढ आई, सब समुद्र पानी से भर गया। कार्बन डाइऑक्साइड की कुछ मात्रा उस पानी में घल गई और कुछ कार्बोनेट चट्टानों में जा मिली। पृथ्वी ने फिर जलवाष्पों, कार्बन डाइऑक्साइड तथा नाइट्रोजन का वायुमण्डल प्राप्त किया और पर्याप्त रूप से ठंडी हो जाने से यह उस वायुमण्डल को धारण कर सकी। यह वायुमण्डल भी आजकल के वायुमण्डल जैसा नही था और न उसमें मानव जीवित रह सकता था। मानव के जीवित रहने के लिए स्वतन्त्र ऑक्सीजन का उपस्थित होना आवश्यक है। वह ऑक्सीजन सम्भवतः प्रकाश-सश्लेषण (फोटोसिन्थेसिस) से प्राप्त हुई, जिसका सम्बन्ध कार्बन डाइऑक्साइड एवं बहुत प्रारम्भिक वनस्पति जीवन दोनों से था।

एक बार फिर हमारे लिये लगातार ठडी होती हुई पृथ्वी पर विचार करना आवश्यक है। जब समुद्र बने, वे बहुत गरम थे। लगभग खौल ही रहे थे। धीरे-धीरे यह समुद्री देग ठडी होती गई, उस तापक्रम तक जिस पर जीवन की गतिविधियां प्रारम्भ हो सकती थी। जीवन का किस प्रकार से आरम्भ हुआ, सदियों से यह अटकलों का विषय बना रहा है, और इस पर हम यहां पूर्णतया विचार नहीं कर सकते। सम्भवत. जीवन-पूर्व की प्रक्रियाओं के सबसे पूर्व के चरणों पर पहली महत्वपूर्ण जानकारी डा० स्टैनले एल० मिलर की रिपोर्ट से मिली। उन्होने शिकागो यूनिवर्सिटी की प्रयोगशाला में गैसो का वैसा ही मिश्रण तैयार किया जैसा कि पृथ्वी के प्रारम्भिक वायुमण्डल मे विद्यमान होने का विश्वास किया जाता है। एक सप्ताह तक उस वायुमण्डल में उन्होने कृत्रिम विद्युत् प्रवाहित की। तत्पश्चात् इस विधि से प्राप्त हुए वायुमण्डल में उन्होने बहुत से ऐसे यौगिक पाये जो आजकल के जैव प्राणियों में पाये जाते है। उसमें उन्होने एमीनो-एसिड विशेप रूप में पाये। इतना मात्र मालूम हो जाने से कि ये एसिड कृत्रिम रूप में निर्माण किये जा सकते है किसी बात का निर्णय, नही होता क्योकि एक कार्बनिक अणु से ऐसे सरलतम जीवाणु का निर्माण, जो पुनरुत्पादन कर सकता हो, एक लम्बी सीढ़ी है। किन्तु फिर भी वह एक आरम्भ है। जैव जीवन के प्रारम्भिक रूप सम्भवतः बहुत सरल जीवाणु थे। आजकल के उन जीवाणुओं की तरह जिनको ऑक्सीजन की आवश्यकता नही थी, जैसे कि लाल रंग के गधकीय जीवाणु हैं। ये जीवाणु गधक के वायुमण्डल मे ऑक्सीजन बनाते हैं। या फिर पहले ऑक्सीजन बनाने वाले शैवाल कोरिसीया हो सकते है। ये वे शैवाल है, जिनके डेढ़ अरब वर्ष पुराने जीवाश्म अवशेष पाये गये हैं। यह भी सम्भव है कि इनके जैसे ही अन्य जीवाणुओं ने पहले पहल पर्याप्त मात्रा मे ऑक्सीजन बनाई हो। इस ऑक्सीजन ने फिर बाद में हरे और अधिक जटिल पौधों को बनाया जो खुद बहुत बड़ी मात्रा में ऑक्सीजन बना सकते थे और इस प्रकार जीवन के उच्चतर रूपों की निर्माण क्रिया में सहायता दे सकते थे। जैसे-जैसे वानस्पतिक जीवन का विकास होता गया, यह कार्बन डाइऑक्साइड को चूसता गया। अन्त मे पृथ्वी ने ऐसा वायुमण्डल प्राप्त किया, जिसमें वे गैसें हैं जो कि हम

तीसरा अध्याय

आकाश की यह छत

जब हम वायुमण्डल के ऊपर के क्षेत्रों की तुलना पृथ्वी पर अपने आस-पास के वातावरण से करते है, तो उन क्षेत्रो की सबसे विचित्र विशेषता यह है कि उनमें अपेक्षाकृत सहति नही है, या बहुत कम है। नौ मील की ऊँचाई पर वायुमण्डल की गैसो का घनत्व समुद्रतल पर उपस्थित वायुमण्डल का आठवां भाग है। इससे ऊपर चढने पर घनत्व बहुत शीघ्रता से कम होता जाता है। साठ मील तक पहुँचने पर घनत्व समुद्रतल के आस-पास की वायु के घनत्व का दसलाखवा भाग हो जाता है। यह वही परिमाण है, जिसे साधारण प्रकाश के बल्ब मे "निर्वात या वेक्युम" कहा जाता है। पृथ्वी से १२० मील ऊपर एक घन मील में उपस्थित वायु का भार आध पाउण्ड से कम होता है। इसकी तुलना में समुद्रतल पर इतनी ही आयतन वायु का भार पचास लाख टन होता है। १८५ मील की ऊँचाई पर वायुमण्डल दाब, प्रयोगशाला मे प्रयुक्त होने वाले अच्छे से अच्छे निर्वात पम्प से प्राप्त निर्वात के तुल्य होता है। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि समुद्रतल के समीप की वायु मे उपस्थित एक औसत वायु के अणु को, दूसरे अणु से टकराने से पहले, एक इच का कुछ दस लाखवां भाग दूरी तय करनी पडती है। समुद्रतल से नौ मील ऊपर, अणु से अणु तक पहुँचने के लिए वह दूरी एक इंच का ·०००००४ हो जाती है। ६० मील पर यह दूरी ४० इंच है जब कि १८५ मील की ऊँचाई पर यह लगभग ६ मील है।

हमारे ऊपर के वायुमण्डल मे बहुत ऊँचाई पर स्थित वायुमण्डलीय गैसें सूर्य तथा बाहरी अन्तरिक्ष से आने वाले आक्रमणकारियो को चुनौती देती हैं। यदि ये गैसें न होती तो सूर्य से आने वाले तीव्र लघु-तरंग-दैर्घ्य विकिरणों से हम अपनी रक्षा न कर सकते। लम्बी दूरी से रेडियो सकेतों का ग्रहण न होता। ध्रुवीय क्षेत्रों मे शीतकाल की लम्बी रात्रियों के दौरान "आरोरा" प्रकाश के प्रदर्शन न हो पाते, और हम पर तीव्र गति उल्कापातो द्वारा बमबारी होती रहती। ऐसी अवस्था में यह कल्पना करना कठिन नही है कि हमारे सुदूर ऊपर का वायुमण्डल एक महान् रक्षणात्मक शामियाना या आकाश मे हमारे ऊपर एक छत है।

यद्यपि वायुमण्डल के ऊपरी क्षेत्रों मे एक भाग को दूसरे भाग से अलग करने के लिए कोई अंकित सीमाएँ नही है तथापि उन क्षेत्रो के भिन्न-भिन्न नाम रखे हैं। ये सीमाएं ऋतुओं, अक्षांश तथा निम्न-स्तर की वायुमण्डलीय परिस्थितियों

के साथ-साथ बदलती रहती है। वर्गीकरण की सभी विधियों में वायुमण्डल कई खोलों का बना माना गया है जो कि पृथ्वी को ढके रहते हैं। सबसे सामान्य विधि, जिसका वर्णन हम मुख्य रूप से करेंगे, तापक्रम पर आधारित है।

पहला और सबसे नीचे का खोल ट्रोपोस्फियर कहलाता है और यह समुद्रतल से लेकर लगभग सात मील की ऊँचाई तक फैला हुआ है। पृथ्वी के सारे स्थान इस क्षेत्र में ही पड़ते हैं यद्यपि माउण्ट ऐवरेस्ट अपनी ऊँची चोटी लगभग इसकी सीमा तक उठाये हुए है। ट्रोपोस्फियर से बाइस मील तक की ऊँचाई का क्षेत्र स्ट्रैटोस्फियर कहलाता है तथा स्ट्रैटोस्फियर से पचास मील तक मिजोस्फियर है। इसके ऊपर थर्मोस्फियर २५० मील तक फैला हुआ है और उससे परे का क्षेत्र एक्सोस्फियर है। अनुबन्ध "पाज़" किसी खोल की ऊपरी सीमा को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

इस प्रकार ट्रोपोपाज, ट्रोपोस्फियर और स्ट्रैटोस्फियर के मध्य की सीमा है, स्ट्रैटोपाज, स्ट्रैटोस्फियर तथा मिजोस्फियर के मध्य की इत्यादि। कुछ क्षेत्रों को विशेष नाम भी दिये गये है, जो कि उनकी प्रमुख विशेषताओं के द्योतक हैं। इनमें से ओजोनोस्फियर एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें ओजोन गैस प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहती है। केमोस्फियर क्षेत्र में सूर्य के विकिरणों द्वारा होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाएँ बहुत महत्त्व की है। इसी प्रकार आयनोस्फियर इस क्षेत्र को कहते हैं जिसमें विकिरणों द्वारा प्राप्त अर्धस्थायी अणुओं तथा आयनों का मिश्रण है। ये स्वतन्त्र इलेक्ट्रान अथवा अणु हैं जिन पर विद्युत् आवेश रहता है।

एक आड़ का काम करता है और इस तरह पृथ्वी के पृष्ठ पर "गोलाबारी" नहीं हो सकती। ये खगोलीय आवारागर्द पिण्ड पृथ्वी पर पहुंचने से पहले रास्ते में ऊपरी वायु मण्डल को पार करके आते हैं। यहाँ पर ये वायु के साथ टकराने पर तेज चमक या तापदीप्ति प्राप्त करते हैं और इनमे से बहुत से वही पर समाप्त हो जाते हैं।

उल्कापिण्डीय तापदीप्ति साधारणतया सत्तर मील की ऊंचाई पर प्रारम्भ होती है और पृथ्वी से चालीस मील के ऊपर ही समाप्त हो जाती है। इसलिए हीं यह उल्का-पिण्डों के दिखाई देने का क्षेत्र है। इनको शूटिंग स्टार या "उल्का तारे" भी कहते हैं। दिखाई देने वाले उल्का, बहुधा मटर के दाने की आकृति से कम होते हैं यद्यपि ये बहुत बडे दिखाई देते हैं क्योंकि उनके चारो ओर चमकती हुई गैसों के खोल होते हैं। अधिकाश उल्का रेत के दाने से भी बहुत छोटे होते हैं और उनके चलने से कोई रेखा नही बन पाती। तथापि बडे उल्का इस ऊपरी वायुमण्डल में से आते हुए सदैव समाप्त नही हो जाते। अनुमान है कि दो करोड उल्काओं में से एक इतना बड़ा होता है जो पूर्णतया जल नही पाता और उसके अवशेष पृथ्वी के साथ टकरा जाते हैं। इनमें से कई भूमि पर गिरते हैं, और इस क्रिया मे अनेक मनुष्यों के मारे जाने की भी सूचना मिलती रही है। कुछ के गिरने से भूमि के अन्दर बडे गड्ढे खुद गये है। उल्काओं के सगठन की ठीक जानकारी अभी पिछले कुछ ही वर्षों में हो पाई है।

उल्का वायुमण्डल में सात से चालीस मील प्रति सैकेण्ड की गति से प्रविष्ट होते है। इनके द्वारा पृथ्वी पर पर्याप्त मात्रा में धूल इत्यादि गिरती है, सम्भवतः एक दिन मे दो हजार टन। लगभग ये सारे पदार्थ पृथ्वी के पृष्ठ पर बहुत बारीक धूल या राख के रूप मे गिरते हैं और हमे इनका पता भी नही चलता। फिर भी जब घर में रखे फर्नीचर को साफ किया जाता है तो इस क्रिया मे अन्तरिक्ष से उक्त प्रकार से आई हुई धूल की सफाई भी सम्मिलित है।

हमारे ऊपरी वायुमण्डल पर तारकीय अवशेषों की "बमवर्षा" ही नही होती अपितु सूर्य के तेज विकिरणों की क्रिया भी होती है। इसी वायुमण्डल मे प्रतिदिन नन्ही कणिकाएं यात्रा करती हैं, जो वास्तव में सूर्य से आये प्रोटोन तथा इलेक्ट्रान होते हैं, सूर्य से वायुमण्डल पर प्रोट्रोनो और इलेक्ट्रोनो की एक प्रकार की "वर्षा" होती है, जिसके फलस्वरूप "आरोरा" बनते है जिन्हे उत्तरी तथा दक्षिणी प्रकाश भी कहते है। सूर्य के द्रव्य के ये टुकड़े पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा आकर्षित होकर ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर जाते हैं। इसी कारण से "आरोराओ" की सत्ता ध्रुवो के पास है। पृथ्वी के प्रत्येक स्थान से ये कभी-कभी दिखाई देते है। पुराने रिकार्ड इस बात की पुष्टि करते है कि उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशो मे "आरोरा" के रंग-बिरंगे प्रकाश प्रायः दस वर्ष मे एक बार दिखाई देते है। आरोराओं का दिखाई देना पृथ्वी के छ सौ मील ऊपर प्रारम्भ होता है और साठ मील की ऊँचाई तक रहता है।

अत्यधिक ऊँचाइयो पर आरोरा, प्रोटोन्स (हाइड्रोजन के नाभिक) एवं इलेक्ट्रोन के सयोग मे, हाइड्रोजन के परमाणुओं के बनने के कारण उत्पन्न होते हैं। इस संयोग

में तेज प्रकाश उत्पन्न होता है। बाद में प्रकाश उन प्रतिक्रियाओं से आता हुआ प्रतीत होता है जिनमें इलेक्ट्रोनों की धाराएँ सम्मिलित होती हैं। आरोरा के बनने का तन्त्र अधिकांश रूप से वही है जो नियॉन साइन बोर्डों में होता है।

विद्युन्मय होने के कारण सूर्य से आने वाली कणिकाओ की धाराए, ऊपरी वायु मण्डल में पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के मार्ग में विघ्न डालती है। हमारी ज्ञानेन्द्रियां इन परिवर्तनो को अनुभव नही कर सकती। परन्तु घर जाने वाले कबूतर और कुछ अन्य प्रव्रजक पक्षियों को सम्भवतः उनका ज्ञान हो जाता है। यद्यपि हम उनके प्रभाव को अनुभव नही करते तो भी हम कणिकाओं के आक्रमण के प्रभाव को अवश्य ही अनुभव कर सकते हैं। उदाहरणार्थ १९४० ई० के ईस्टर रविवार के दिन जो महान् चुम्बकीय परिवर्तन हुए थे, उन्होंने सयुक्त राज्य अमेरिका तथा यूरोप के बीच कई घण्टे तक लघुतरंग सचार रोके रखा था। टैलीटाइप और तार-फोटो प्रणाली के फैले हुए जाल में भी रुकावट आ गई थी। साथ ही साठ एम्पीयर तक की अतिरिक्त विद्युत् धाराएँ उच्च वोल्टेज ले जाने वाली विद्युत् तारों पर समाविष्ट हो गई थीं जिनके फलस्वरूप कई मुख्य सर्किटों के फ्यूज उड़ गये और इस प्रकार बहुत बड़े क्षेत्रो में बिजली चली गई। इसके अतिरिक्त पता चला है कि इस चुम्बकीय तूफान ने हमारे मौसम पर भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाले।

"आरोरा" के कारणो तथा इसमें होने वाले परिवर्तनों से कई वर्ष पूर्व इस बात का सुझाव मिला कि वायुमण्डल में बहुत ऊंचाई पर एक स्थाई विद्युत संवाहक क्षेत्र है। रेडियो ने इस समस्या को और भी प्रत्यक्ष कर दिया है। रेडियो तरंगें प्रकाश की किरणो के सदृश सीधी रेखाओं में चलती है, और चूंकि रेडियो संवाद सफलतापूर्वक बहुत दूर भेजे जा सकते हैं, इससे स्पष्ट है कि उन संवादों को ले जाने वाली तरंगें पृथ्वी की गोलाई के साथ-साथ परावर्तित होती हैं और इस प्रकार संवाद इतनी दूर पहुंच जाते हैं। वास्तव में वायुमण्डल में कई तहे ऐसी हैं जहा कि परावर्तन होता है। या इसे अधिक सही तौर पर यों कहा जा सकता है कि वहाँ एक निरन्तर क्षेत्र है। सुविधा के लिए वैज्ञानिको ने इस सम्पूर्ण संवाहक और परावर्तन क्षेत्र को 'आयनोस्फियर' नाम दिया है। इस क्षेत्र को तीन भागो में बांटा गया है। लगभग साठ मील पर "ई" क्षेत्र, लगभग १४० मील पर "एफ$_1$" तथा २२० मील पर 'एफ$_2$' क्षेत्र।

ये विद्युत् सवाहक क्षेत्र ऐसे है जहाँ आयन (परमाणविक्र कण जिन पर विद्युतीय आवेश होता है) अपेक्षाकृत बड़ी संख्या में सूर्य के अल्ट्रा-वायलेट प्रकाश तथा विद्युत्-चुम्बकीय विकिरणों द्वारा उत्पन्न होते हैं। सामान्यत: 'ई' तथा 'एफ$_1$' क्षेत्र केवल दिन के समय ही विद्यमान होते हैं, 'एफ$_2$' क्षेत्र दिन के समय में पैदा होता है और रात के समय छा जाता है। वर्ष के कुछ मौसमों में 'एफ$_1$' और 'एफ$_2$' क्षेत्र आपस में एक दूसरे में मिलकर एक मिला-जुला 'एफ' क्षेत्र बनाते हैं। इस दैनिक घट-बढ़ के साथ-साथ सौर-गतिविधि भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करती है, जैसा कि सौर धब्बों का ग्यारहवर्षीय चक्र है। सौर धब्बों की अधिकतम सक्रियता के समय मे 'एफ$_2$' तह का

इलेक्ट्रोन घनत्व न्यूनतम सक्रियता के समय से दुगना होता है। सम्भव है पृथ्वी तल के तूफान या गर्मी तथा ठण्ड की लहरें भी उक्त क्षेत्रों पर प्रभाव डालती हों।

इसके अतिरिक्त एक अन्य आक्रान्ता भी पृथ्वी पर प्रहार करता है, जिसका ऊपरी वायुमण्डल पर पूरा प्रभाव पडता है। यह हमलावर है कासमिक विकिरण। ये किरणें सूर्य से तथा अन्तरिक्ष की गहराइयों से सब दिशाओं मे आती हैं, और अत्यधिक ऊर्जा से भरी होती हैं। ये कासमिक किरणें वायुमण्डल के साथ टकराती हैं परन्तु उसमे प्रत्यक्षतया घुस नही जाती। बहुत ऊँचाई पर (हाल के परिमापनों से ज्ञात हुआ है कि बीस हजार मील ऊपर) प्रत्येक कासमिक किरण बन्दूक की गोली की भाँति आकर वायु के अणु से टकराती है। इस टक्कर से प्राप्त टुकड़े—इलेक्ट्रोन, आयन, परमाणु तथा न्यूक्लीयर कण—पृथ्वी पर बौछार की शक्ल में गिरते हैं, जिससे कि कई प्रकार के प्रभाव पैदा होते हैं। उनमें से कुछ पर हम इसी पुस्तक के अन्य अध्यायों में अधिक विस्तार से प्रकाश डालेंगे। यहाँ हमारा सम्बन्ध ऊपरी वायु में होने वाली न्यूक्लीयर प्रतिक्रियाओ तथा उनसे पैदा होने वाले अस्थिर, रेडियो एक्टिव उत्पादों से है।

कासमिक विकिरणों की "बमबारी" का एक प्रभाव यह होता है कि साधारण नाइट्रोजन का अणु एक विशेष प्रकार का कार्बन बन जाता है जिसे "कार्बन १४" नाम दिया गया है, जो कार्बन डाइऑक्साइड बनकर वायु में मिल जाता है और अन्त मे यह सब वनस्पतियो तथा जीवित प्राणियो का एक भाग बन जाता है। जीवनकाल मे वनस्पतियाँ और जन्तु निरन्तर इस विशेष कार्बन को कार्बन के सामान्य प्रकार के साथ ही अपने शरीर मे समाविष्ट करते रहते हैं, परन्तु जब मर जाते हैं तो कार्बन को ग्रहण करने की क्रिया समाप्त हो जाती है। रेडियोएक्टिव होने के कारण इस "कार्बन १४" का क्षय होता रहता है जिससे इसकी मात्रा घटती रहती है। ५५०० से कुछ ही अधिक वर्षों में किसी वनस्पति या जीव के अवशेषों में इस कार्बन १४ तत्त्व की आधी मात्रा रह जाती है। और फिर इतने ही वर्षों में इस आधी का भी आधा अर्थात् पूरी का एक चौथाई रह जाता है। चूंकि हर ५५०० वर्ष में इसी दर से कमी होती रहती है इसलिए वायुमण्डल का यह रेडियो कार्बन एक प्रकार की घड़ी का काम करता हैं, जिससे कि बहुत प्राचीन काल मे घटी घटनाओं का समय निश्चयपूर्वक बताया जा सकता है। यह पुरातत्त्व विज्ञान के लिए बहुत उपयोगी तथा लाभकारी है।

तथापि केवल कार्बन ही ऐसा तत्त्व नहीं है, जो कि ऊपरी वायुमण्डल में बनता हो। रेडियो हाइड्रोजन या ट्राईटियम रेडियो कार्बन की तरह कासमिक किरणों की बमबारी से बनता है और इसी प्रकार से यह भी प्राकृतिक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए उपयोगी है, यद्यपि सम्पूर्ण वायु में इसकी कुल मात्रा एक औंस से कभी नहीं बढ़ती। रेडियो हाइड्रोजन जलवाष्पों के अणु मे साधारण हाइड्रोजन के स्थान पर पहुंचकर वर्षा के साथ पृथ्वी पर गिरती है। इस तरह से हमें वायुमण्डल में जलवाष्पों रहने के समय, तथा वायु और बादलो की गतिविधियों के विषय में बहुत जानकारी

मिलती है। एक तीसरा प्राकृतिक रेडियोएक्टिव परमाणु 'बेरीलियम ७' है, जो रेडियो हाइड्रोजन (ट्राइटियम) से भी अधिक दुर्लभ है। परन्तु आशा है यह भी आगे जाकर मौसम सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में सहायक होगा।

मौसम, जैसे कि पहले लिखा जा चुका है, एक निम्नस्तर की घटना है। बड़ी ऊँचाई से जल-वाष्पो के बादल पृथ्वी पर रुई के गोलों की तरह प्रतीत होते है। यद्यपि बादल ऊपरी वायुमण्डल में बहुत कम पहुंच पाते हैं तथापि वहाँ पर उनका पूर्णतः अभाव नही है। अक्सर दुर्लभ मोतियों की तरह के बादल पन्द्रह या सोलह मील की ऊँचाई पर दिखाई देते है। ये बर्फ के रवों (क्रस्टलों) के बादल होते है, जिससे यह स्पष्ट है कि इस ऊँचाई पर वायुमण्डल में थोड़ी मात्रा जलवाष्पो की उपस्थित है। कभी-कभी तो कुछ प्रदीप्त बादल, जिनका रंग चमकता हुआ हल्का नीला होता है, सम्भवतः पचपन मील की ऊँचाई पर दिखाई देते है। इन्हें 'निशादीप्त' बादल कहते हैं, और जिनका कारण विघटित उल्काओं के धूलिकण समझे जाते हैं। सूर्यास्त से लगभग एक घंटा पश्चात् ये अच्छी प्रकार देखे जा सकते है क्योंकि अपनी ऊँचाई के कारण सूर्य द्वारा प्रदीप्त हो जाते है, यद्यपि आकाश में साधारणतः अन्धेरा होता है।

यह स्पष्ट है कि अद्भुत तथा आश्चर्यजनक घटनाएँ ऊपरी वायुमण्डल मे घटती रहती हैं। प्राकृतिक रहस्यो के इस भण्डार की खोज अभी प्रारम्भ ही हो पायी है। निश्चय ही आज तक की गई आशातीत खोजों में से एक उत्कृष्ट खोज ऊपरी वायुमण्डल के रासायनिक संगठन की है और उसमें ओजोन की उपस्थिति एक मुख्य उदाहरण है। परन्तु अन्य घटक, जैसे नाइट्रस ऑक्साइड, मिथेन, कार्बन मोनोक्साइड, परमाणविक आक्सीजन तथा उदासीन सोडियम परमाणु भी पाये गये हैं।

ऊपरी वायुमण्डल का वास्तविक रूप में आश्चर्यजनक घटक उदासीन सोडियम है। पानी की अल्पमात्रा के साथ भी क्रिया कर जाने वाला यह क्रियाशील तत्त्व किस प्रकार से वायुमण्डल में प्रविष्ट हो सका और बहुत ऊँचाई पर शुष्क वायुमण्डल में कैसे मिल सका? क्या यह अन्तरिक्ष से आया है या उल्काओं तथा उल्काओं से बने कणों से आया है? या समुद्र के लवण सोडियम क्लोराइड से आया है? यह रहस्यमय है।

ऊपरी वायुमण्डल में उपस्थित दुर्लभ-पदार्थों को, जो कुल मिलाकर सारी वायु का दस लाखवां भाग हैं, इतना महत्त्व देना विलक्षण प्रतीत होता है। यही कहा जा सकता है कि कई व्यावहारिक कारण है जिनसे कि ऊपरी वायुमण्डलीय घटनाओ का अध्ययन बहुत आवश्यक है। यह क्षेत्र पृथ्वी पर होने वाली घटनाओ में महत्त्वपूर्ण भाग लेता है। यह रहस्यपूर्ण समस्याओं से भरा है, मनुष्य जिनकी वर्षों तक खोज करता रहेगा।

चौथा अध्याय

अशान्ति सागर

कुछ स्थानों पर कभी-कभी वायु की गति इतनी कम होती है कि अनुभव भी नही की जा सकती। ससार के कुछ भागो मे हवाएं प्रायः दक्षिण की ओर चलती हैं और अन्य कई स्थानों पर अधिकतर उत्तर की ओर चलती है या सीधी नीचे की ओर। अपना रास्ता बदल लेना उनका स्वभाव है। प्राकृतिक योजनाओ में वायु की नित्य होने वाली गति एक आवश्यक घटना है।

विपुवत् (इक्वेटर) तथा अक्षांश तीस से पैंतीस डिग्री उत्तर या दक्षिण के मध्य का क्षेत्र सूर्य से अधिक मात्रा में ऊर्जा प्राप्त करता है जबकि ध्रुवीय क्षेत्रों पर कुल मिला कर सौर ऊर्जा की कमी रहती है, यहां पर सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा के मुकाविले मे विकिरण द्वारा ताप की अधिक मात्रा निकल जाती है। इस असन्तुलन का संशोधन वायु के सचार द्वारा आशिक रूप से होता है। अन्यथा मध्य तथा उच्च अक्षांशो पर तापक्रम घटते रहेंगे और निम्न अक्षांशों पर बढते रहेंगे, जब तक कि हर क्षेत्र में ताप की प्राप्ति तथा हानि मे सन्तुलन नही हो जाता। इसके परिणामस्वरूप प्राप्त सन्तुलित तापमान ध्रुवीय क्षेत्रो को इस समय की अपेक्षा अधिक ठण्डा तथा विपुवतीय क्षेत्रों को असह्य गर्म बना देगा। इस प्रकार पृथ्वी के चारों ओर चलने वाली हवाएं एक विराट् ऊष्मागतिक (थर्मोडायनेमिक) इजन की तरह ताप वितरण का काम करती हैं—ऐसा इंजन, जो सूर्य से अपने लिये ऊर्जा प्राप्त करता है। पृथ्वी का घूर्णन एक फ्लाई व्हील है, जो हवाओं की दिशा का निर्देशन करता है।

जैसा कि अधिकांश प्राकृतिक घटनाओ में होता है, वायु की धाराओं में एक व्यापक योजना पाई जा सकती है, जिस पर आचरण सम्बन्धी छोटी-छोटी जटिल योजनाएं आश्रित हैं। उनमें से वे घटनाए जिनको भली प्रकार समझा जा सका है और जिनका हमारे साथ सम्बन्ध है, सारी की सारी ही ट्रोपोस्फियर में ही घटती हैं। वायुमण्डल की यह सबसे नीचे की तह है, जो तुलनात्मक दृष्टि से विद्यालय के ग्लोब पर पुते अच्छे रोगन की तह से कुछ ही मोटी है। पृथ्वी पर वायु का साधारण परिसचरण कैसे आरम्भ होता है, यह जानने के लिए हमें दो सरल उदाहरणो पर विचार करना होगा। इनकी सहायता से हम पृथ्वी के चारों ओर वायु की गति के आधारभूत सिद्धान्तों को प्रतिपादित कर सकते हैं।

जब हम सिगरेट का धुआं एक जलते हुए विद्युत् लैम्प पर फूंक मार कर फेंकते

हैं तो हम देखते है कि धुआं लैम्प से उटती हुई गर्म वायु के साथ ही ऊपर उठ जाता है। गर्म वायु ठण्डी वायु से हल्की होती है क्योंकि इसके अणुओं में अधिक ऊर्जा होती है, वे आपस में ज्यादा टकराते हैं और पलट कर अधिक शक्ति से वापस हो जाते है। ऐसा करने में वे अपने आसपास अधिक स्थान बना लेते है, कुछ उसी तरह से जैसे कि एक चिड़चिडा आदमी अपने साथियों को अपने से पृथक् कर देता है और वे दूर हट जाते है। इस प्रकार से गर्म हवा स्वाभाविक रूप से उठती है और इसका स्थान शीतल तथा घनी वायु ले लेती है। शीतल वायु जब गरम वस्तुओं के सम्पर्क में आती है तो अपने आप में गरम हो जाती है। इस प्रकार से वह ऊपर उठती है और उसका स्थान आसपास की कुछ ठण्डी हवा ले लेती है।

दूसरे उदाहरण में हम कुछ समय के लिए ऐसी असम्भाव्य स्थिति पर विचार करते हैं जिसमें कि एक ग्रामोफोन रिकार्ड के घूमते पृष्ठ पर पिस्सू या कोई और छोटे जानवर बैठे हों। यदि हम कुछ दूरी से देखें तो जो पिस्सू केन्द्र के पास बैठा है वह छोटे चक्कर में मन्द गति से घूमता हुआ दिखाई देता है। दूसरा जो पिस्सू घूमने वाली प्लेट के किनारे के पास बैठा हुआ है, वह कही ज्यादा तेजी से चल रहा होगा। यदि हमारा केन्द्र के पास बैठा हुआ पिस्सू कूद कर बाहर की ओर बैठे हुए अपने दूसरे साथी पर गिरने का यत्न करे तो अवश्य ही वह अपने लक्ष्य को नही पा सकेगा, क्योंकि जब पहला पिस्सू उडान में होगा तब बाहर वाला पिस्सू अपनी पहली स्थिति से कुछ दूरी अवश्य ही आगे निकल गया होगा।

ठीक उसी प्रकार से जैसा कि ऊपर घूमती हुई प्लेट पर बैठे पिस्सुओं के विषय मे कहा गया है, हमारी घूमती हुई पृथ्वी पर स्थित भिन्न स्थानों के गति-वेग मे बहुत अन्तर है। सूर्योदय तथा सूर्यास्त को छोड़कर हम अपनी पृथ्वी के घूर्णन को भी अनुभव नही कर सकते। परन्तु एक एस्कीमो, पृथ्वी के एक चक्कर मे कुछ सौ मील की ही यात्रा करता है, जब कि विषुवत्वृत्त (इक्वेटर) के आस-पास रहने वाला एक जगली एक चक्कर में कई हजार मील की यात्रा कर लेता है। यदि एक एस्कीमो विषुवत् वृत्त (इक्वेटर) की ओर यात्रा करे तो उसके लिए यह आवश्यक होगा कि प्रत्येक कदम के साथ वह पृथ्वी के घूर्णन-वेग का कुछ हिस्सा भी प्राप्त करे। प्रत्येक कदम मे इस प्रकार प्राप्त किया गया वेग बहुत थोड़ा होगा और सम्भवत. उसके लिए अगोचर भी हो, परन्तु फिर भी उसका प्रभाव अवश्य होगा। वायु का गतिमय भाग जो एस्कीमो की तरह पृथ्वी के साथ पक्की तरह से बन्धा नही है एक अक्षाश से दूसरे अक्षांश में जाता हुआ कुछ दिशा परिवर्तन कर लेगा, इसके बजाय कि वह पृथ्वी के नये घूर्णन-वेग को प्राप्त करे। सौभाग्यवश वायु पृथ्वी से बिलकुल स्वतन्त्र नही है जैसा कि घूमती हुई प्लेट पर बैठा कूदने वाला पिस्सू था। भूमि-पृष्ठ की अनियमितताएँ, पहाड़, वृक्ष व घर, वायु की गति को कम करते है। चूंकि घूमती हुई पृथ्वी विषुवत् वृत्त (इक्वेटर) पर लगभग एक हजार मील प्रति घंटा के वेग से घूम रही होती है,

वह अपने साथ घूमती हुई वायु की गति को भी कई सौ मील प्रति घंटा कर देती, यदि पृथ्वी पर उपस्थित वस्तुओ के कारण घर्षण न होता।

हमारे पहले सिद्धान्त के अनुसार कि वायु गरम होकर ऊपर उठती है, विपुवतीय क्षेत्रो के समुद्र के गुनगुने पानी और गरम जगलो के ऊपर वायु ऊपर उठती है। यह गरम वायु जब स्ट्रेटोस्फीयर की ऊँचाई तक पहुँचती है तो ठण्डी हो जाती है। यह हमेशा के लिए ऊपर चढती नही रह सकती क्योकि ऊँचे स्तरो पर अपेक्षाकृत गरम वायु का क्षेत्र उसे रोकता है, जैसाकि हम तीसरे अध्याय मे पढ़ चुके हैं। वायु नीचे भी नही आ सकती, क्योकि नीचे से चढने वाली गरम वायु रोकती है। उस समय उस वायु के लिए यही रास्ता रह जाता है कि वह उत्तर या दक्षिण की तरफ घूम जाये। अतः हम देखते हैं कि विपुवत्वृत्त पर बहुत ऊँचाई पर वायु ध्रुवों की तरफ गति कर रही होती है। इसका स्थान लेने के लिए ध्रुवीय दिशाओ से ठण्डी वायु पृथ्वी के साथ-साथ चलती है इसीलिए विपुवत्वृत्त के आस-पास पृथ्वी पृष्ठ की हवाएँ पृथ्वी की केन्द्रीय पट्टी की ओर जाती है।

हमारे दूसरे सिद्धान्त की पुष्टि मे पृथ्वी का घूर्णन कम तथा अधिक ऊँचाइयो पर ध्रुव से सीधे विपुवत्वृत्त की ओर होने वाली गतियो को रोकता है। उच्च-स्तरो पर ध्रुवों की ओर जाती हुई वायु का चलना प्रारम्भ करते समय का वेग विपुवतीय वेग होता है। यह ग्रामोफोन की घूमने वाली प्लेट पर किनारे के पास वाले पिस्सू के समान है। जैसे-जैसे वह उत्तर तथा दक्षिण की ओर बढती जाती है, तो वह अपने आप को पृथ्वी पृष्ठ के ऐसे भागो पर पाती है, जहाँ गतिवेग निरन्तर कम होते जाते है। वायु इस प्रकार से नीचे वाली भूमि से आगे निकल जाने का प्रयत्न करती है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह निरन्तर बढती हुई पूर्व दिशा मे गति कर रही हो। जिस समय वह अक्षांश तीस डिग्री उत्तर या दक्षिण तक पहुँच जाती है तो ठण्ड तथा घर्षणादि के प्रभाव के कारण वायु पृथ्वी के पृष्ठ पर फिर वापस आ बैठती है। फलस्वरूप यह अक्षांश असामान्य रूप से शान्त अक्षांशों मे से एक है। इन्हें अश्व (हॉर्स) अक्षांश कहते हैं। एक पुरानी कहानी के अनुसार प्राचीन काल के मस्तूलों वाले जलयानों को कई शान्त स्थानो पर बहुत देर तक रुकना पड़ता था। कभी-कभी पानी और भोजन की कमी के कारण लदे हुए पशुओ को कम करने के लिए उन्हें समुद्र मे फेंकना पड़ता था। ये जानवर अधिकतर घोडे होते थे और इसलिए उन अक्षांशों का नाम 'अश्व अक्षांश' पड़ गया।

इसके विपरीत कम ऊचे स्तरों पर तीस डिग्री अक्षाश से विपुवत् वृत्त की ओर गति करती हुई वायु ऐसी भूमि तथा समुद्रो पर से गुजरती है जिनकी गति निरन्तर बढ़ रही होती है। इसमे विपरीत दिशा सम्बन्धी परिवर्तन हो जाता है और पश्चिम की ओर घूमते हुए विपुवतीय अक्षांशो पर पहुँच जाती है, या इसे पूर्वी पवन कहा जा सकता है। कम ऊँचाई पर चलने वाली पूर्वी हवाएँ "व्यापारिक हवाएँ" कहलाती है, क्योंकि मस्तूल वाले प्राचीन जलयानों के दिनो में ये हवाएँ पृथ्वी पर

की अन्य सब हवाओ से अधिक टिकाऊ तथा विश्वसनीय थी। एक शताब्दी पूर्व इन हवाओ के द्वारा ही जहाजों को चला कर चाय व अन्य सामान, यात्री तथा डाक ससार के एक भाग से दूसरे भाग तक पहुंचाये जाते थे। अन्त में जब ये व्यापारी हवाएँ केन्द्रीय क्षेत्रों तक पहुंचती है तो गर्म हो जाती है और ये स्ट्रेटोस्फीयर के स्तर तक पहुंच कर चक्र पूरा करने के लिए ऊपर उठना प्रारम्भ कर देती हैं। वायु एक विराट् वायुमण्डलीय चिमनी में से धुएं की तरह ऊपर चढ़ती है। इसके परिणामस्वरूप भूमितल के आसपास पृथ्वी के मध्य के चारों ओर एक निर्वात क्षेत्र बन जाता है। इसको "डोलड्रम" (विषुव प्रशान्त मण्डल) कहते हैं। शक्ति-चालित जलयानों से पहले के व्यापारिक जहाजो पर विपत्ति का मूल कारण यही क्षेत्र हुआ करता था।

ध्रुवीय क्षेत्र एक विशिष्ट क्षेत्र है, जहाँ की हवाएँ अधिक विश्वसनीय नहीं है। ध्रुवो पर शीतल वायु नीचे जाती है और विपुवत्वृत्त की दिशा में पृथ्वी के साथ साथ-साथ बहती है। परन्तु जिस समय तक यह ध्रुवीय वायु साठ डिग्री उत्तर या दक्षिण के अक्षांशो तक पहुँचती है, पृथ्वी का घूर्णन उसकी दिशा को इतना बदल देता है, कि वह प्राय: पूर्णरूपेण पश्चिम की ओर चलने लगती है। पृथ्वी पर उपस्थित लोगों को ऐसा प्रतीत होता है मानो वायु पूर्व से चल रही हो। यद्यपि यहाँ पर वायु के "गर्म" हो जाने के शब्द का प्रयोग सन्देहात्मक है। परन्तु यह ध्रुवीय वायु इस अक्षांश पर अपेक्षाकृत गर्म होती है और ऊँचाइयों की ओर उठना आरम्भ करती है। वायु एक बार ऊँचे उठकर उच्चस्तरीय रास्ते से ध्रुवों पर लौट आ सकती है ताकि वह पुन: अपनी यात्रा आरम्भ कर सके, या यह वहीं पर विक्षोभ में फंस सकती है, जो विपुवतीय तथा ध्रुवीय क्षेत्रों के बीच में होता है।

ये क्षेत्र, समशीतोष्ण (टेम्परेट) प्रदेशों को घेरे हुए हैं, जहाँ संसार की जनसंख्या का तीन चौथाई भाग निवास करता है। ये क्षेत्र समशीतोष्ण इस अर्थ में है कि वहाँ पर वायु की कमी ध्रुवों से विपुवत् वृत की ओर तत्पश्चात् विपुवत् वृत्त से ध्रुवों की ओर जाती हुई न्यूयार्क जैसे स्थान को किसी दिन तो मानो उष्ण कटिबन्ध क्षेत्र का हिस्सा और अगले ही दिन उत्तर ध्रुवीय क्षेत्र का भाग बनाती है। वायुमण्डल में होने वाले गर्म तथा ठण्डी हवाओं के आपसी अव्यवस्थित संघर्ष अथवा नोक-झोंक के कारण मध्य क्षेत्र में वायु संचार का सुनिश्चित क्रम नहीं रहता। विपुवत्वृत्त के ऊपर उठते हुए विराट् वायुमण्डलीय चक्र के प्रबल प्रभाव के कारण, सामान्यतया गर्मियों में भूमिपृष्ठ की हवाएँ दक्षिण-पश्चिमी (उत्तरी गोलार्द्ध में) की दिशा से आती हैं। शीतकाल की हवाएँ उत्तरी ध्रुव की वायु के शनै: शनै: नीचे बैठने के कारण उत्तर-पश्चिम से आती है। केन्द्रीय पट्टी की पश्चिमी हवाएँ इस प्रकार ध्रुवीय पूर्वी हवाओं तथा विपुवतीय व्यापारिक हवाओं की विपरीत दिशा में चलती हैं। यदि प्रतिगामी प [illegible] हवाएँ न होती, तो इस ग्रह (पृथ्वी) के लम्बे इतिहास काल में ध्रुवीय [illegible] वतीय वायु क्षेत्रों का अवरोधक प्रभाव पृथ्वी के घूर्णन को यदि बन्द न कर बहुत कम तो अवश्य ही कर देता।

भौगोलिक परिस्थितियों के द्वारा वायु का सामान्य परिसंचरण परिवर्तित होने पर बाधित होता है। उच्च पर्वतीय शृंखलाएं हवा को ऊपर उठा देती हैं। रेगिस्तान पर से गुजरने पर वायु गर्म हो जाती है। बर्फीले क्षेत्र वायु को ठण्डा कर देते हैं और महान् सागर अपने पानी के तापक्रम के अनुसार वायु को गर्म कर देते हैं या ठण्डा। प्रशान्त तथा अन्धमहासागर के ऊपर से गुजरने पर हवाओं में बड़ा क्षैतिज परिसंचरण पैदा हो जाता है। "अश्व" अक्षांशों के समीप स्ट्रैटोस्फियर के नीचे से आने वाली शीतल वायु इन महासागरों के मध्यवर्ती क्षेत्रों पर नीचे बैठ जाती है। जैसे ही यह पार्श्वों में फैलती है, गरम हो जाती है और पृथ्वी का घूर्णन उस वायु को वृत्ताकार गति प्रदान करता है। इस प्रकार से इन महासागरों के ऊपर वायु के विराट् चक्र बन जाते हैं—एक उत्तरीय अन्धमहासागर के ऊपर तथा दूसरा उत्तरी प्रशान्त महासागर के ऊपर, ऐसा ही चक्र दक्षिणी प्रशान्त महासागर तथा दक्षिणी अन्ध महासागर पर भी बन जाता है। प्रत्येक गोलार्द्ध में यह जोड़ा इस प्रकार से गति करता है जैसे कि एक दूसरे के साथ "गियर" किया गया हो। उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई चलने की दिशा में तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उसके विपरीत दिशा में। चूंकि इनके केन्द्रों में वायु बाहर से आती है इसलिए महासागरों के ऊपर इन हवाओं के चक्कर बड़े होते जाते हैं। किनारों पर पानी छिड़कने वाले यन्त्र की तरह वायु बड़ी मात्रा में परे धकेल दी जाती है। कैरिबियन सागर से आने वाली ऐसी हवाएँ पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका में गर्म ऋतु लाती हैं और उत्तरी अन्ध-महासागर से आने वाली शीतल वायु ग्रेट ब्रिटेन में शीत ऋतु लाती है। प्रशान्त महासागर पर उत्तरी क्षेत्र से आने वाली शीतल वायु पश्चिमी राज्यों तक पहुँच सकती है जबकि दक्षिणी सागरों से आने वाली गर्म वायु जापान तक पहुँचती है।

भूमि से समुद्र या झील की ओर तथा समुद्र या झील से भूमि की ओर चलने वाली हवाएँ समुद्र के किनारे पर दिन और रात के मध्य तापक्रम के बढ़ने या घटने से उत्पन्न होती हैं। दिन के समय भूमि, पानी की अपेक्षा शीघ्र गरम हो जाती है और रात को जल्दी ठण्डी भी। अपेक्षाकृत गर्म क्षेत्र में आने वाली हवाएँ दिन के समय पानी से भूमि की ओर चलती हैं और अन्धेरा होने के पश्चात् विपरीत दिशा में। ऐसी हवाएँ उष्ण प्रदेशों में ज्यादा प्रत्यक्ष रूप से चलती हैं, और समुद्र और पहाड़ों के मिलने के स्थान पर इनका विस्तार बहुत अधिक होता है। निःसन्देह ही झीलों, पहाड़ों, दर्रों इत्यादि की निकटता एवं उस स्थान की स्थिति के कारण अनेक प्रकार की विविध वायविक परिस्थितियां बनती हैं।

नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे अव्यवस्थित रूप से गति करने वाली उष्ण हवाएं प्रायः महाद्वीपों की भूमि पर चलती रहती हैं, विशेषकर उस अवस्था में जबकि भूखण्ड की सतह एक सी न हो, कहीं पर जंगलात हों और उसके बाद जोती हुई या ऊसर भूमि हो। इस तथ्य की सचाई की जाँच के लिए हमें केवल आकाश में मंडराने वाले पक्षियों को देखने की आवश्यकता है जो कि वृत्ताकार में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार से पक्षियों का हवा में तैरना न तो उनकी झुण्ड बनाकर रहने की आदत

का ही परिणाम है, और न इससे यह प्रतीत होता है कि उनको सीधी पंक्ति में उड़ने से कुछ घृणा है, तथा न ही इस प्रकार से वे प्रकृति के नियमों के विरुद्ध उड़कर अपनी योग्यता का ही परिचय देना चाहते हैं, जैसा कि एक पक्षीशास्त्री ने कभी कहा था। वास्तव में पक्षियों का इस प्रकार से उड़ना उनका गर्म हवा के स्थानीयकृत स्तम्भों (लोकलाइज्ड कालम) में रहने का एक तरीका है—गर्म हवा जो नीचे की बहुत गर्म भूमि पर से ऊपर उठती है। मानव ने भी इन उष्ण हवाओं में, बिना मोटर के हवा मे तैरने वाले हल्के यानों की सहायता से उड़ना सीख लिया है। ऐसा करने से उसने यह ज्ञान प्राप्त किया है कि एक वायुधारा एक समय ऊपर चढ़ रही होती है, पानी में बुलबुले की तरह फूटकर एक दम रुक सकती है और नीचे की ओर चलना शुरू कर सकती है। उष्ण वायवीय धाराएँ कभी तो बड़ी और एकसी चलने वाली होती हैं और विशेषकर गर्मियों की ऋतु मे उनके ऊपर प्रायः मेघपुंज भी उपस्थित होते हैं, जिनकी गरज होती है।

ऊपरी वायुमण्डल में भी हवाएँ चलती हैं, जो भूमितल के पास चलने वाली हवाओ की तरह ही होती हैं। ऊँची हवाओं के क्रम उतने ही जटिल और बदलने वाले होते है जैसे कि नीचे की हवाओं के। इस समय इस विषय में हमारी जानकारी बहुत अधूरी है परन्तु उल्काओं का मोड़ बनाते हुए गिरना, निशादीप्त बादलों की गतिविधि, तथा गुब्बारों की उडानें, इत्यादि इस बात की सूचक हैं कि उत्तरी गोलार्द्ध पर बीस से पचास मील की ऊँचाई के मध्य में हवाएं मुख्यतया गर्मियों में पूर्व अथवा उत्तर पूर्व से, तथा सर्दियों मे पश्चिम या उत्तर-पश्चिम की ओर से आती हैं। पचास मील से ऊपर सम्पूर्ण वर्ष मुख्यतः पश्चिमी हवाओं के चलने के चिह्न मिलते हैं। परन्तु यह सर्वथा निश्चित नही है।

ट्रोपोपाज के समीप एक बहुत ही सक्रिय वायु प्रणाली पाई जाती है, जिसे जैट धाराओ (जैट स्ट्रीम) का नाम ठीक ही दिया गया है। सन् १९२३ मे ही जर्मन वैज्ञानिकों ने उच्च पश्चिमी हवाओं से सबंधित एक अत्यधिक वेग से चलने वाली वायु धारा का पता लगाया था जो कि अपेक्षाकृत तग है। इस जैट स्ट्रीम की उपस्थिति अब स्वीकार कर ली गई है और सामान्य वायुमण्डलीय संचार में सदा उपस्थित होने वाला एक घटक मान लिया गया है। वैज्ञानिक इसकी उपस्थिति को अभी तक ठीक प्रकार से सिद्ध तो नही कर सके हैं जैसा कि वे चाहते हैं परन्तु इस धारा के विशिष्ट लक्षण ज्ञात कर लिए गए हैं। यह जैट स्ट्रीम तुलनात्मक दृष्टि से वायु की एक तंग नदी है—केवल तीन सौ मील चौड़ी—जिसके दोनों ओर कुछ शान्त वायु की पट्टियां हैं। यह पृथ्वी के चारो ओर एक लगातार चलने वाली धारा नहीं है अपितु अधिकतर हवा के झोंकों या धक्कों की एक शृंखला है जो कि बड़े-बड़े होते हैं। विषुवत्-वृत्त के उत्तर के आसपास कहीं से ध्रुवों की ओर तथा दस और चालीस हजार फुट के मध्य में चल रही यह वायु की तग धारा सम्भवतः उच्च गति से हजारों मील तक चलती रहती है।

इस जैट धारा या ऐसी अन्य जैट धाराओं के कारण के विषय में वैज्ञानिक अभी तक सहमत नही है। फिर भी यह लगभग निश्चित है कि यह ठण्डी ध्रुवीय हवा जो कि दक्षिण की ओर चल रही होती है और गरम उष्ण कटिबन्धी उत्तर की ओर चलती हुई हवा के मध्यवर्ती दावों का परिणाम है। यह हो सकता है कि सौर ऊर्जा जो कि उस क्षेत्र में शोषित होती है, इन धाराओ को गति-वेग देती है। नि.सन्देह ही यह महत्त्वपूर्ण है कि सबसे ज्यादा गतिवेग उन क्षेत्रो के ऊपर पाये जाते हैं जहाँ कि गर्म समुद्री धाराएँ ठण्डे प्रदेशों के समीप चलती हैं क्योंकि सर्पिल मार्ग, जो ये वायु धाराएँ ग्रहण करती है, विषुवतीय तथा ध्रुवीय क्षेत्रों की हवाओं में ताप का पर्याप्त विनिमय करता है। "जैट स्ट्रीम" मुख्यत. ससार की अधिकांश ऋतुओं पर प्रभाव डालती है।

इस प्रकार हवाएं उस समय ऊपर उठती हैं जब कि पृथ्वी पृष्ठ के दो भागों के तापक्रमो मे अन्तर होता है और इसलिए ही उनके ऊपर उपस्थित वायु की तहों मे अन्तर होता है। जब तक कि हमारी पृथ्वी के ऊपर वायु का यह शामियाना रहेगा और यह ऐसे प्रदीप्त सूर्य के चारों ओर घूमती रहेगी, जिसके पीछे प्रायः ताप रहित अन्तरिक्ष है, तथा जब तक उसके पृष्ठ पर विषमता रहेगी तब तक स्थानीय रूप से और विशाल पैमाने पर तापक्रमों में अन्तर रहेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि हवाओं के भाग्य में अनन्त काल तक चलना ही लिखा है।

पांचवाँ अध्याय

क्षुब्ध आकाश

किसी बडी नदी मे भवर और चक्कर खाती हुई लहरो के समान ही तूफान भी पृथ्वी पर चलने वाली हवाओ के द्वारा ही प्राय. पैदा किये जाते है। विभिन्न कारणो अथवा अवस्थाओ से उत्पन्न हुए इन तूफानों मे से कुछ एक तो कई सप्ताह तक परेशान कर सकते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो कि किसी गर्मी के दिन पैदा होते है। अत्यधिक सक्रिय होकर खुद समाप्त हो जाते है। एक तूफान, किसी महाद्वीप मे सामान्य जीवन की सक्रियता मे विघ्न उपस्थित कर सकता है जबकि कोई अन्य तूफान इतना छोटा भी हो सकता है कि उसके प्रभाव का क्षेत्र कुछ एक एकड ही हो। ये तूफान जीवन प्रदान करने वाली वर्षा या नाश, दोनों के ही कारण बन सकते हैं। तूफान किसी न किसी रूप मे पृथ्वी के सब भागों में प्रायः आते ही रहते है।

हम इन्हे कई नामों से पुकारते है, जैसे गरज भरे तूफान (थण्डर स्टार्म), ओला तूफान, वर्षामय तूफान, बर्फ के तूफान, गर्द और धूल के तूफान (आँधियां), प्रभजन (हरीकेन), चक्रवात (साइक्लोन), टॉर्नेडो, बर्फानी तूफान (ब्लिजर्ड)। यद्यपि इनमें से प्रत्येक की अपनी विशेषताएँ हैं तथापि एक चीज सांझी है—वह है जोर से चलने वाली हवा। गरजभरा तूफान, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, बहुत चमकती हुई बिजली और गड़गड़ाहट का प्रदर्शन करता है। धूल-मिट्टी के तूफान मे उड़ते हुए धूल-कणों की बहुत मात्रा होती है। परन्तु धूल का होना हवाओ में आनुषंगिक है जो इसे उडा ले जाती है। टॉर्नेडो तूफान को छोड कर बिजली की चमक तथा गरज का भी उन पर कोई प्रभाव नही पड़ता। तूफान जनित उपद्रवो का कारण वायु-पुंजों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना है; अवक्षेपण (जैसा कि आगे बताया गया है) इनमे ईधन का काम करता है; और फिर वहाँ पर विभिन्न घटनाएँ घटती हैं।

ठीक प्रकार से कहा जाये तो तूफान केवल उसी अवस्था मे होते है जबकि वायु एक निश्चित वेग से चलने लगती है। १८०५ ईस्वी में ब्रिटिश एडमिरल सर फ्रेंसिस ब्यूफोर्ट ने जलयान-चालकों के मार्गदर्शन के लिए एक पैमाना बनाया था, जिसके अनुसार तूफानी हवाएँ वे थी जो जहाजों के रस्सों तथा मस्तूलो को नष्ट कर देती थीं या जहाजों को हानि पहुँचाती थी। १९०६ ईस्वी में इस मापदण्ड मे वायु के वेगों को सम्मिलित कर दिया गया और यह मापदण्ड आजकल ससार भर में सर्वथा मान्य है, और प्रचलित है। इस ब्यूफोर्ट पैमाने पर, जैसा कि आजकल भी उसका नाम है,

तूफानी हवाएँ ६४ मील प्रति घण्टा के वेग से प्रारम्भ होती हैं। प्रभंजन (हरीकेन) तथा टौर्नेडो की हवाएं इस उपर्युक्त वेग से कहीं अधिक वेग की होती हैं। गरजने तूफान में भी हवाएँ कभी-कभी उक्त वेग तक पहुंच जाती हैं। इसलिए हम निम्न-लिखित वर्णन में केवल उन्हीं तूफानों का वर्णन करेंगे जो कि परिभाषा में आते हैं।

पृथ्वी पर वायुमण्डलीय उपद्रवों में से सबसे अधिक विनाशी उपद्रव प्रभंजन (हरीकेन) के होते हैं, जिनके साथ मानव का मुकाबला है। इसमें टौर्नेडो का प्रचण्ड रोष तो एक साथ प्रकट नहीं होता और न ही किसी एक समय में उसका प्रभाव इतने बड़े क्षेत्र में होता है जैसा कि बर्फानी तूफानों में होता है। उक्त दोनों कमियां प्रभंजन में उसकी भीषणता तथा वेग से पूरी हो जाती है। अपने जीवनकाल में जो कि कभी-कभी कुछ सप्ताह होता है—एक प्रभंजन पांच लाख वर्ग मील से भी अधिक क्षेत्र में विनाश-लीला रचा सकता है। इसमें वायु का वेग प्रायः १५० मील प्रतिघंटा तक पहुंच जाता है, और अन्त में यह कई टौर्नेडो तूफानों को जन्म दे सकता है। प्रवृद्ध होने पर प्रभंजन में ५०० ट्रिलियन अश्व शक्ति (हौर्स पावर) तक की ऊर्जा आ जाती है।

प्रभंजन (हरीकेन) अधिकतर ग्रीष्मऋतु के अन्त में तथा शरदऋतु के प्रारम्भ में डोलड्रमों (विषुव प्रशान्त मण्डलों) के गुनगुने पानी के ऊपर बनते हैं। डोलड्रम वह शान्त विषुवतीय पट्टी है, जो व्यापारी हवाओं के मध्य में होती है। विषुवत् वृत्त (इक्वेटर) के दस डिग्री उत्तर तथा दस डिग्री दक्षिण में उत्पन्न होने के बाद पहले वे आराम से पश्चिम की ओर चलते हैं। फिर उत्तरीय गोलार्द्ध में प्रशान्त अथवा अन्धमहासागर के किनारे के साथ-साथ ऊपर की ओर मुड़ कर फिलीपीन्स, चीन के समुद्रतट, जापान या संयुक्त राज्य अमरीका के पूर्वी तट पर जा टकराते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में वे आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के पूर्वी तट पर उतर आते हैं। दक्षिणी अन्धमहासागर के क्षेत्र में ऐसे तूफान नहीं आते क्योंकि वहाँ का जल पर्याप्त गर्म नहीं है जो कि इन तूफानों के उत्पन्न होने और बढ़ने में सहायक हो। एक बार बन जाने के बाद हरीकेन तूफानों का जोर बढ़ता जाता है जब तक कि वह आर्द्र वायु, जिससे ये बढ़ते हैं, किसी महाद्वीप द्वारा न रोक दी जाय या ध्रुवों से आने वाली ठण्डी हवाएँ उसे ठण्डा न कर दें।

संकेतों को समझने वाले व्यक्तियों को प्रभंजन (हरीकेन) के आने की सूचना कई दिन पहले ही प्राप्त हो जाती है। तापक्रम में धीरे-धीरे वृद्धि, बैरोमीटर के दाब में निरन्तर कमी तथा निश्चित समय में पैदा होने वाली समुद्री लहरों की संख्या में कमी ऐसे तूफानों के प्रारम्भिक संकेत हैं। बहुत दूर समुद्र में प्रभंजन की जोरदार हवाएं समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें पैदा कर देती है जो तीस मील प्रति घण्टा के वेग से आगे बढ़ती हुई इस आने वाले खतरे की सूचना दे देती है। सामान्यतया, व्यापारी हवाओं के प्रभाव से लहरों के बनने का अन्तर आठ लहरें प्रति मिनट होता है। जैसे-जैसे प्रभंजन निकट आता है, वह अन्तर चार या पांच लहरों में परिवर्तित हो जाता है, लहरों का आकार बढ जाता है। यदि लहरें देर तक एक ही दिशा से आती रहें

तो यह समझा जाता है कि तूफान शीघ्र ही पहुंच रहा है। परन्तु यदि दिशा बदल जाय तो समझ लो कि दूसरी ओर हट रहा है।

जब तूफान लगभग पाँच सौ मील दूर होता है तो पहले वायुमण्डलीय संकेत दिखाई देते हैं। ये प्राय रगदार ऊँचे बादल होते हैं जो कि आकाश में एक ही स्थान से बनते हुए दिखाई देते हैं। जैसे-जैसे ये बादल गाढे होते जाते है, सूर्य अथवा चन्द्रमा एक प्रभामडल से घिर जाते हैं। शीघ्र ही नीचे के गाढ़े बादल ऊँचे बादलों से भिन्न दिशा मे वेग से आकाश मे गमन करते है। बादलो के इस विराट् दृश्य के अन्त में गहरे काले रग के बादलो की एक दीवार निकट आने लगती है, जिसको 'बार क्लाउड' कहते है। दो से पाँच मील पर पहुँचने के बाद ये बादल दूर-दूर तक फैल जाते है। जब यह दीवार पास आ जाती है तो फिर कुछ शान्ति हो जाती है, और तूफान के आने का डर नही रहता। तुरन्त बाद ही रुक-रुक कर प्रचण्ड हवाएँ आरम्भ हो जाती है। तेज वर्षा तथा आवाज के साथ हवा के जोरदार झोके शीघ्र ही चलने लगते है। ज्यों-ज्यों तूफान समीप आता जाता है, ये चिह्न भी प्रचण्ड रूप धारण करते जाते है।

प्रभजन (हरीकेन) उत्पन्न होने के लिए गर्मी, आर्द्रता एवं समतल पृष्ठ, जिससे नीचे स्तरो पर वायु भली प्रकार बह सके, आवश्यक है। समुद्र की शात विस्तृत सतह पर जब सूर्य की गर्मी पडती है तो बहुत बडे परिमाण मे वायु गर्म हो जाती है, और साथ ही वह वायु जलवाष्पों से सतृप्त भी हो जाती है। गर्म हुई यह हवा ऊपर उठती है और उसका स्थान ग्रहण करने के लिए आसपास की वायु वहाँ आ जाती है। यह क्रिया यद्यपि सयमित होती है, परन्तु होती है बहुत बडे पैमाने पर। नाली में बहते हुए पानी पर जैसे पृथ्वी के घूर्णन का सर्पिल प्रभाव होता है, इसी प्रकार (उत्तरी गोलार्द्ध मे) आने वाली हवा से, एक वामावर्त्त घुमाव पैदा हो जाता है। गर्म हुई वायु इस प्रकार से बट खाती हुई ऊपर ही ऊपर चढ़ती जाती है।

इस प्रकार से गर्म वायु के ऊपर चढने से दाब में कमी हो जाती है। दाब में कमी के कारण वायु फैलती है, फैलने के कारण शीतल हो जाती है और शीतल होने के कारण उसमें उपस्थित जलवाष्पो का अवक्षेपण (प्रेसीपिटेशन) हो जाता है। अन्त मे अवक्षेपण के द्वारा आर्द्र वायु में उपस्थित गुप्त ताप का नि.सरण होता है, और इस प्रकार प्रभजन (हरीकेन) का ईंधन जल उठना है। वायु जो पहले बहुत धीरे चल रही थी, बढ़ कर हवा के झोंके में बदल जाती है, और तत्पश्चात् यह झोंका जोरदार हवा अथवा तूफान का रूप ले लेता है एव शीघ्र ही एक शक्तिमान प्रभजन (हरीकेन) बन जाता है। यदि इस नवजात शिशु को जन्म होते ही नही मरना, तो उसे ऊँचे स्तरो पर ऊपर चढती हुई धाराओं द्वारा मुहैया की गयी वायु की बडी मात्रा बाहर धकेल देगी। इस वायु का दाब दस लाख पाउण्ड तक का हो सकता है।

उष्ण कटिबन्ध में लगभग तीस हजार फुट की ऊँचाई पर विश्वसनीय औ‑ तार चलने वाली व्यापारिक हवाएँ अदृश्य हो जाती हैं और इनका स्थान विक्षुब्ध वायुमण्डल ले लेता है। यहाँ पर वायवीय भवर दक्षिणावर्त्त तथा

दिशाओ में चलते हैं। जब ऊँचे स्तर या दक्षिणावर्त्त भंवर निचले स्तर वाले वामावर्त भवर के साथ मिलता है, जो प्रारम्भिक प्रभजन होता है, तो परिणामस्वरूप कम्पनशील चीज पैदा होती है, और वह तब तक रहती है, जब तक इसमें और आर्द्र वायु सम्मिलित होती रहती है। आर्द्र वायु भूमि पृष्ठ पर से ऊपर चढ़ती है तथा ऊँचाई पर पहुँचने पर इसमे से आर्द्रता एव शक्ति निचुड जाती है। वायु की ऊपर की ओर चढाई के कारण ही वहा से बनते हुए बादल दृष्टिगोचर होते हैं। निचले स्तर पर चलती हवाओ के कारण बादल पृथ्वी पृष्ठ के साथ-साथ जाकर प्रभंजन में मिल जाते है।

इस प्रकार पूर्ण यौवन को प्राप्त प्रभजन मे वायु गति से ऊपर चढ़ती जाती है और बादलो के साथ मिलकर पचहत्तर से पांच सौ मील के व्यास या वायवीय भंवर बनाती है, जो आसमान में सम्भवतः दस मील ऊँचाई तक पहुँचता है। इसका केन्द्र जिसको प्रभंजन की "आख" कहते हैं, विलक्षण प्रकार का क्षेत्र है जहाँ कि शांत वातावरण होता है। यह क्षेत्र व्यास मे पाँच से पचास मील तक होता है। भूपृष्ठ के पास के बादलो को छोड़ कर शेष यह सम्पूर्ण क्षेत्र प्रायः साफ होता है। प्रभंजन की बाह्य सीमाओं से हवाएँ अन्दर की ओर बढ़ती हुई तेजी पकडती जाती हैं। यह गति वेग "आंख" क्षेत्र के ठीक बाहर बहुत अधिक होता है। अधिक से अधिक गतिवेग एक सौ छयासी मील प्रति घटा १९३८ ईस्वी मे न्यू इग्लैंड के एक तूफान में माउंट वाशिंगटन ऋतु वेधशाला ने रिकार्ड किया था।

यद्यपि घूमते और चक्कर खाते हुए प्रभजन में हवाएँ उच्च गति वेगो पर पहुँच जाती है तथापि पार्श्वीय गति लगभग बारह मील प्रति घंटा तक की ही होती है। कभी-कभी तो प्रभजन लगभग रुक ही जाता है और कभी-कभी विशेषकर जब कि वह पश्चिमी हवाओं के क्षेत्र में हो, साठ मील प्रति घटा के गति वेग से दौड़ता है। जब प्रभजन भूमि पर से गुजरता है तो उसके मार्ग में एकदम कुछ परिवर्तन होता है। इस बात मे उसका व्यवहार बच्चों के घूमते हुए उस लट्टू के समान होता है, जो किसी वस्तु के साथ टकराकर नयी दिशा ग्रहण करता हुआ घूमने लगता है।

दो प्रभजन आपस मे एक दूसरे से बहुत कम मिल पाते हैं। यदि दो एक ही क्षेत्र में उत्पन्न हो जाये, तो वे एक दूसरे को आकर्षित करते है और पास पहुँच कर एक दूसरे के साथ-साथ चलने लगते है, मानो नाच रहे हों। चूंकि वे दोनो ही बीच के स्थान की वायु को भारी मात्रा में अपनी ओर खींच रहे होते है, इसलिए पहले वे पास-पास हो जाते है। पास पहुँचने पर उनका वेग मध्य मे अधिक वायु के न होने के कारण कम हो जाता है। बहुत पास पहुँचने पर वे इस प्रकार से घूमते हुए चक्कर काटते है जैसे कि वे दोनो मुष्टि-युद्ध प्रतियोगिता में भाग ले रहे हों। परन्तु वे एक दूसरे मे मिल नही पाते और कुछ समय के पश्चात् एक दूसरे से दूर हटना प्रारम्भ कर देते हैं और उनकी तेजी फिर बढ़ने लगती है। सितम्बर १९५१ ईस्वी मे बरमुडा मे ऐसे ही दो प्रभजनों की आपस में मुठभेड हुई थी। जैसे ही एक विनाशक प्रभजन,

जिसमें वायु का गतिवेग एक सौ साठ मील प्रति घंटा था, बना, एक अन्य प्रभंजन उस स्थान से लगभग चार सौ पचास मील दूर अन्ध महासागर मे बन गया और दोनों एक दूसरे के पास आने लगे। उपर्युक्त चक्रनृत्य के बाद दोनों ही प्रभंजन खुले अन्ध महासागर की ओर भाग गये और खतम हो गये।

प्रभजनों से हानि वेग से चलने वाली हवा, वर्षा तथा दाब मे अन्तरों के कारण से होती है जिन्हें भारी परिमाण में वायु तथा पानी के स्थानान्तर उत्पन्न करते है। प्रभजन के भयानक झोंके की टक्कर एक सौ पाउण्ड प्रतिवर्ग फुट के बराबर होती है। ऐसी ही टक्करों से मकान भी टूट जाते है या ध्वस्त हो जाते है। अनेक वस्तुएँ प्रक्षिप्त अस्त्र की भांति उडती हुई दूर चली जाती है। प्रभजन द्वारा रेलगाडिया तक रेलवे लाइन पर से उडा दी गई है और भारी तोपें अपने स्थान से हट गई हैं। ऐसे तूफानो से कभी-कभी जल-प्रलय आ जाता है, एक इंच प्रति घण्टा की दर से चौबीस घण्टे मूसलाधार वृष्टि होने से बाढ़ तक आ जाती है। एक बार फिलिपीन मे चौबीस घण्टों में छयालीस इच वर्षा हुई थी, जैमाइका मे साढे छयानवे इच वर्षा चार दिन मे हुई थी। इसके अतिरिक्त तटवर्ती क्षेत्रो में प्रभजन द्वारा उत्पन्न पानी की विशाल लहरे भूमि को जल-प्लावित कर देती हैं। कभी-कभी तो चालीस मील प्रति घण्टा के वेग से समुद्री लहरें तट पर जोर से टकराती है और नीची जमीन को डुबो देती हैं। कभी-कभी ये जोरदार लहरें मजबूत से मजबूत समुद्री दीवारो को भी तोड़ देती है। ऊपर उठती हुई धाराओं के कारण, एक बडा प्रभंजन भूमि के एक वर्ग मील के ऊपर वायु दाब को २० लाख टन तक कम कर देता है, जबकि दूसरी ओर विक्षुब्ध समुद्र दसियों लाख टन प्रति वर्गमील का अतिरिक्त दाब पेंदे पर डाल देता है। इस प्रकार से एकदम इतने बडे पैमाने पर दाबो के स्थानान्तर के कारण कभी-कभी भूचाल तक आ जाते है। विश्वास किया जाता है कि १९२३ ईस्वी में जापान मे ऐसा ही विनाशकारी भूचाल प्रभंजन द्वारा पैदा किया गया था।

प्रभजनों द्वारा होने वाली हानि को कम करने के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने हरीकेन रेडार यन्त्रों का एक जाल सा टेक्सास से मेन तक बिछाया हुआ है और समुद्र पार के सैनिक प्रतिष्ठानों मे भी रेडार यन्त्र लगे हुए हैं जो कि तूफानों का पता लगा सकते है। इन केन्द्रो से ऋतु संबंधी सूचनाएँ वाशिंगटन स्थित मौसम भविष्यवाणी केन्द्र को भेजी जाती हैं। इसी प्रकार सैकड़ो तटवर्ती केन्द्रो से मौसम का हाल जानने के लिए छोड़े गये गुब्बारों, जलयानों तथा वायुयानों द्वारा बहुत सी उपयोगी रेडियो सूचनाए उपर्युक्त केन्द्र को भेजी जाती हैं। प्रभजन के आने पर केन्द्र से उसकी स्थिति, वायु के गतिवेग, दिशा इत्यादि के सम्बन्ध में नवीनतम सूचनाएं समाचार वितरण केन्द्रों तथा प्रसारण केन्द्रो को भेजी जाती हैं। इसी प्रकार वायु सेना और जल-सेना के अड्डो इत्यादि को भी वे सूचनाएँ भेजी जाती है। ऐसी जानकारी इलेक्ट्रानिकी गणक यन्त्रों को भी दी जाती है, जिसकी सहायता से पिछले तूफानों के आचरण के आधार पर विदित हो जाता है कि प्रभंजन (हरीकेन) की वास्तविक स्थिति क्या है, और उसका आचरण क्या रहेगा।

यद्यपि प्रभंजन की इतनी बडी शक्ति वास्तव में भयजनक है, तथापि सकेन्द्रित प्रचण्ड रोष में टौर्नेडो तूफान का मुकाबला और कोई भी वायवीय क्षोभ नही कर सकता। उत्तरी अमेरिका का अन्दर का प्रदेश ऐसा क्षेत्र है जिसमें सारे ससार से अधिक विनाशकारी टौर्नेडो तूफान आते हैं। यद्यपि टौर्नेडो ससार भर के सभी महाद्वीपों में आते हैं फिर भी सयुक्त राज्य अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के सिवा शेष स्थानों पर उनका अनुभव नहीं होता। आस्ट्रेलिया मे भी टौर्नेडो प्राय: अमेरिका महाद्वीप की तरह ही आते हैं, परन्तु कम प्रचण्ड होते है। इस शताब्दी मे औसतन लगभग दो सौ टौर्नेडो सयुक्त राज्य अमेरिका मे रिपोर्ट किये गये है। परन्तु सम्भवत: सूचना तथा रिपोर्ट के अधिक अच्छे साधन होने के कारण १९५७ ईस्वी मे इन से अढाई गुना तथा १९५८ ईस्वी में लगभग पाच गुना ये तूफान आये। सम्पूर्ण अठतालीस राज्यों मे ये रिपोर्ट किये गये है। वे सभी महीनो मे आते हैं परन्तु अधिकतर मई मे तथा सब से कम दिसम्बर में आते हैं।

टौर्नेडो तूफानों की उत्पत्ति अचानक होती है। ये कई प्रकार की परिस्थितियों के कारण पैदा होते है, यद्यपि साधारणतया गर्म तथा आर्द्र दक्षिणीय वायु के बहुत बडे पुंज की उत्तरी क्षेत्रों से आने वाली शीतल एव शुष्क वायु के बड़े पुंज के साथ टक्कर के परिणामस्वरूप इनका जन्म होता है। गर्म वायु की तह प्रायः आठ हजार से दस हजार फुट मोटी होती है और शीतल वायु पाच हजार से छ. हजार फुट की ऊँचाई पर अन्दर प्रवेश करती है। ऐसा होने पर गर्म वायु का उच्च स्तर ऊपर उठता है। इस प्रकार सबसे ऊपर गर्म वायु की तह, उसके नीचे शीतल वायु की और फिर नीचे गर्म वायु की तह, अर्थात् एक "सैंडविच" सी बन जाती है। इस वायु के मिश्रण के बाहरी भाग पर अत्यन्त क्षोभ पैदा हो जाता है। एक हलका सा भंवर कभी कभी एक तेज तूफान मे बदल जाता है, जिसमें से गर्म वायु ऊपर आकाश में उठने लगती है, जैसे कि एक अस्थिर तैराक के नीचे से बीच याल खिसकर ऊपर आ जाती है।

पृथ्वी पृष्ठ के साथ चलती हुई जो वायु उठती हुई वायु के क्षेत्र में जाती है, उसे पृथ्वी का घूर्णन, भंवराकार गति प्रदान करता है। जैसे कि बर्फ पर चलने वाला एक "स्केटर" या जिस प्रकार वैले नर्तक अपने फैले हुए हाथ शरीर के पास कर लेने से अधिक तेजी से घूमने लगता है उसी तरह वायु उठती वायु के नजदीक जाने पर और वेग पकड़ती है। ऊपर चढने पर यह वायु फैलती है और ठण्डी हो जाती है। इस उत्पन्न शीतलता के कारण द्रवण हो जाता है, जिससे कि गुप्तताप शक्ति मुक्त होती है। यह शक्ति घूर्णन को चलाये रखती है और साथ ही वेग को भी बढ़ा देती है। इस प्रकार द्रवण का शक्ति का मूल स्रोत होना एक विवाद का विषय है। पचास ईस्वी पूर्व तक रोमन ल्यूक्रेटियस, टौर्नेडो तूफानों का सम्बन्ध विद्युतीय गतिविधि के साथ समझते थे। यही विचार अब फिर जड़ पकड़ रहा है। परन्तु एक टौर्नेडो किस प्रकार विद्युतीय शक्ति को प्रयुक्त कर सकता है, ज्ञात नही किया जा सका। टौर्नेडो की स के प्रारम्भिक चरणो मे विद्युतीय घटना का कोई सम्बन्ध प्रतीत नही होता।

जब एक बार वायुमण्डल में एक चक्रवात के रूप मे टौर्नेडो बन जाता है, तब हो सकता है कि विद्युतीय ताप अथवा विद्युतीय वायु प्रभावों से उसमें वृद्धि होती हो।

यद्यपि इनकी गति की दिशा निश्चित नहीं होती, तथापि आम तौर पर उत्तरी गोलार्द्ध हर टौर्नेडो तूफान दक्षिण-पश्चिम की ओर से उत्तर-पूर्व की ओर गति करते है। बताया जाता है कि ये वृत्तों में अथवा अंग्रेजी की सख्या आठ के आकार में गति करते है, फिर ये अंग्रेजी अक्षर यू की तरह घूम जाते है और फिर शान्त हो जाते है। तीव्र गर्जन के साथ वे एक सौ तीस मील प्रति घटा के वेग से गति कर सकते है यद्यपि इनका औसत गतिवेग लगभग पच्चीस मील प्रति घटा है। खुले मैदानी क्षेत्र में ये अधिक देर तक रहते है और सीधे गति करते है, यद्यपि उनकी "पीक" इधर-उधर ऊपर-नीचे हिचकोले खाती देखी जा सकती है। पहाड़, बड़ी-बड़ी इमारतें तथा अन्य रुकावटें उसके मार्ग को बदल सकती है। आशा के विपरीत पहाड़ों के वे पृष्ठ जहाँ आम तौर पर वायु टकराती है और पहाडों की चोटियाँ भी, एकान्त घाटियों की अपेक्षा आक्रमण का कम निशाना बनती हैं। टौर्नेडो तूफान का घाटियों में जाने का एक प्राकृतिक स्वभाव होता है, जैसे कि बच्चों का मिठाई के थैले तक पहुँचने का स्वभाव होता है। सौभाग्य से टौर्नेडो का रास्ता अपेक्षाकृत संकरा होता है। इसकी चौड़ाई कुछ फुट से लेकर कुछ मीलों तक होती है, और औसत रूप में एक टौर्नेडो पच्चीस मील से कम ही दूर तक जा पाता है। टौर्नेडो का औसत जीवन लगभग आठ मिनट होता है और किसी एक विशेष स्थान पर वह केवल पन्द्रह मिनट तक ही रह पाता है। परन्तु थोड़े ही ऐसे टौर्नेडो होते हैं जिन्हें औसत टौर्नेडो कहा जा सके। एक टौर्नेडो का आक्रमण सात घटे तक रहा और इस समय वह तीन सौ मील चला गया।

आते हुए टौर्नेडो की गरज बहुत भीषण और कानों को बहरा कर देने वाली होती है। यदि तुलना की जाय तो एक टौर्नेडो की आवाज की गरज रात के समय दस हजार रेलवे ट्रेनों के एक साथ गुजरने की आवाज के बराबर होती है या दस लाख बैलों के एक साथ रंभाने की आवाज के तुल्य अथवा जैट वायुयानों के एक स्क्वैड्रन के इकट्ठा उड़ने की आवाज के बराबर होती है। यह गरज इतनी ऊँची होती है कि टौर्नेडो से गिराये गये भवनों और उखाडे गये वृक्षो की आवाज नही आती। इस भयोत्पादक प्रभाव के साथ तडित झंझा, मूसलाधार वर्षा अथवा ओलाबारी होती है। टौर्नेडो की पीक के साथ-साथ बिजली की चमक भी खूब आती है।

घूर्णन करती हु ये हवाएँ इतनी जबर्दस्त गति से चलती है कि गति वेग नापने वाले यन्त्र, यदि उसमें रखे जायें तो टूट जाते हैं। परोक्ष विधियों से प्राप्त ज्ञान तथा सैद्धान्तिक गणनाओ द्वारा टौर्नेडो में वायु का ऊँचे से ऊँचा वेग दो से आठ सौ मील प्रति घंटा समझा गया है। जून १९५३ ईस्वी में मैसेचुसेटस राज्य की वार्सेस्टर काऊंटी में जब टौर्नेडो तूफान आया तो ट्रांस्मीशन लाइन के टावर नष्ट हो गये थे, जिससे वायु के गति वेग का कुछ ठीक अनुमान लगाया जा सका। निर्माण के समय इन

टावरो के डिजाइन को इंजिनीयरी विधियों द्वारा सावधानीपूर्वक टेस्ट कर लिया गया था। इनके नष्ट हो जाने से यह अनुमान लगाया गया कि हवा का गति वेग कम से कम तीन सौ पैंतीस मील प्रति घंटा, परन्तु तीन सौ पचहत्तर मील प्रति घंटा मे अधिक नहीं था। टौर्नेडो के प्रभावो एव गति वेग के अन्य अनुमानों से पता चलता है कि उनका वेग पाच सौ मील प्रति घंटा से अधिक भी हो सकता है, किन्तु ये आंकड़े काफी विवादग्रस्त है।

अत्यन्त तीव्र शक्ति की ऊर्ध्वदिक वायु टौर्नेडो की पीक में पैदा होती है और आकाश के इस विशालकाय "वैक्यूम क्लीनर" ने बहुत सी बड़ी-बड़ी चीजो को भी हवा में उड़ा दिया है। लोहे के बडे-बड़े पुल झटका देकर खीचकर उठा लिये गये हैं, और मुड़े-तुड़े लोहे के ढेर के रूप में कुछ दूरी पर उन्हें फेंक दिया गया है। मोटर-गाडिया और रेल के डिब्बे भी शीघ्रता से उठाकर फेंक दिये गये हैं। यहां तक कि ईंटो से भरे रेल के डिब्बे भी उलट दिये गये हैं। छतें और गिरजाघरों की चोटियां तथा क्रास एक दर्जन मील दूरी पर फेंक दिये गये हैं। कन्सास में आये एक टौर्नेडो में बैलो का एक झुंड बहुत ऊपर उड़ गया था, जो उडते हुए बड़े-बड़े पक्षियो की तरह दिखाई देता था। मनुष्यों तथा पशुओं को बहुत दूर तक उठाकर ले जाने के पश्चात् बिना चोट के वापस उतारने के भी उदाहरण पाये गये हैं। १९५५ ईस्वी में दक्षिणी डकोटा के बाउडल नामक स्थान पर एक माता ने देखा कि टट्टू पर सवारी कर रही उसकी नौ-वर्षीय कन्या को टौर्नेडो उठाकर ऊपर आकाश में ले गया। डरी हुई माता नीचे से उसे देखती रही। आधा मील उड़ने के बाद उसी प्रकार से टट्टू पर सवार वह लडकी बिना चोट लगे जमीन पर आ गई। लड़की को कुछ हलकी-सी खरोंचो के अतिरिक्त कोई चोट नही आई। साथ ही टट्टू भी ठीक-ठाक था।

कोई जीवित वस्तु इस प्रकार से बहुत ऊँचाई तक ऊपर ले जाई जाय और फिर आराम से भूमि पर टिका दी जाय, इस बात पर कोई विश्वास नही करेगा। सत्य यह है कि टौर्नेडो के शिकार जमीन पर फेंके नही जाते, अपितु ऊपर चढ़ती हुई वायु धारा द्वारा नीचे आराम से उतार दिये जाते हैं। यदि उस ऊँचाई से, जहां कि टौर्नेडो उनको ऊपर ले जाता है—जोकि शायद एक मील होती है—यदि कोई गिरे तो उसे अवश्य ही गम्भीर चोट आयेगी भले ही उसकी मृत्यु न हो पाये। यह स्मरण रहे कि टौर्नेडो हवा की ऊपर चढ़ती हुई बड़ी धारा द्वारा बनता है। इस पीक के बाहर भी वायु ऊपर की ओर गति कर रही होती है यद्यपि वस्तुओ को उड़ाकर ले जाने वाली अन्दर की वायु की अपेक्षा उसका वेग बहुत कम होता है। उस वायु में इतनी शक्ति जरूर होती है कि वह वस्तुओ को तैरा सके और यही हवा वस्तुओ को नीचे उतारती है।

टौर्नेडो के अभ्यन्तर मे जो सक्शन पैदा होता है, वह बोतलों पर लगे कार्क को निकाल देता है, बन्द बक्स का ढक्कन खोल देता है, मानव शरीर पर से पहने . उतार देता है। मुर्गी के चूजों के पख नोच डालता है, और मकानों का

विध्वस कर देता है। स्मरण रहे कि वायुमण्डल का सामान्य दाव पन्द्रह पौण्ड प्रतिवर्ग इंच होता है। यह दाव बाहर तथा अन्दर की तरह बराबर होता है। टौर्नेडो की पीक मे सक्शन के कारण दाव तीन से चार पौण्ड तक होता है। जब टौर्नेडो निकट आता है, तो घर मे रुकी अन्दर की वायु का दाव तो वही रहता है परन्तु बाहर वाला दाव कम हो जाता है। चार पौण्ड प्रति वर्ग इंच के दाव-अन्तर का अभिप्राय एक औसत खिड़की पर कई टन दाव हो जाता है। यह दाव एक दीवार पर सम्भवतः एक सौ टन और एक घर पर कई हजार टन का होता है, जिससे विस्फोट पैदा होता है।

टौर्नेडो के दो चचेरे भाई भी हैं, घूर्णनमेघस्तम्भ (वाटरस्पाउट) तथा बवण्डर (डस्ट डेविल)। इनमें से एक भी सौभाग्यवश इतना प्रचण्ड नही है जितना कि उनका दुष्ट सम्बन्धी। घूर्णनमेघ स्तम्भ एक समुद्रीय टौर्नेडो है। आकृति तथा शक्ल में वह टौर्नेडो से मिलता-जुलता है। यह एक साप के आकार वाला बादल है जोकि समुद्र की तरफ उतरता हुआ दिखाई देता है। बादल के नीचे का सिरा जैसे ही पृष्ठ पर तक पहुचता है, पानी में मथनी सी फिरने लगती है, और ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि पानी खौल रहा हो। अन्त मे जब पानी का उठता हुआ शंकु के आकार का स्तम्भ और बादल का नीचे का सिरा मिलते हैं तो पानी की बहुत बड़ी बौछारें बन जाती है। घूर्णनमेघस्तम्भों का औसत गति वेग एक सौ मील प्रति घंटा होता है। तथापि वे टौर्नेडो से कही कम भयानक होते हैं। ये प्राय. ससार के बड़े-बड़े समुद्रों पर उत्पन्न होते है और उनकी सम्पूर्ण शक्ति समुद्र की लहरों मे ही समाप्त हो जाती है।

बवण्डर (डस्ट डेविल) सूर्य से तप्त भूमि पर पैदा होते हैं। चूंकि वे इतने ऊँचे नही उठ सकते कि वायुमण्डल के शीतल क्षेत्रों तक पहुंच पाएँ जहां कि उनके अन्दर उपस्थित जलवाष्पों का द्रवण हो सके, अतः शक्ति का वह स्रोत इन्हें नही मिल पाता। इसीलिए बवण्डर को टौर्नेडो के बराबर का स्थान नही दिया जाता, अपितु निम्न श्रेणी दी जाती है। बवण्डर विभिन्न प्रकार की वायुमण्डलीय परिस्थितियों के अनुसार बनता है। ऐसा समझा जाता है कि यह गरम हवा के ऊपर उठने से उत्पन्न होता है, जो हवाओं के प्राकृतिक क्षोभ में पकड़ी जाती है, जिससे बवण्डर घूमने लगता है। हवा के छोटे-छोटे बबूले प्रायः गर्मी के दिनों मे दोपहर के समय गेहूँ के खेतों और बाजारों एवं गलियों में देखने को मिलते हैं। ये प्रायः एक मिनट से भी कम समय तक रहते हैं और कुछ पत्तों और धूलि को उड़ा देने के अतिरिक्त कुछ और नहीं कर पाते। कभी-कभी कोई एक इतना जोरदार हो सकता है कि वह किसी छत से कंकड़ों को नोच डाले। असली बवण्डर रेगिस्तान में पैदा होता है। सबसे बड़ा बवण्डर मिस्र देश में काहिरा के पास बना था। यह एक मील तक ऊँचा हो गया था और लगभग छः घण्टे तक चलता रहा। एक औसत बवण्डर की ऊंचाई इसके दसवें भाग के बराबर होती है और यह एक सौ फुट व्यास का होता है। इसको आसानी से टौर्नेडो से

पृथक् किया जा सकता है, क्योंकि यह भूमितल पर ही नाचता हुआ दिखाई देता है जबकि टौर्नेडो एक बादल के नीचे लटकता हुआ दीखता है।

टौर्नेडो की उत्पत्ति, स्थिति आदि का ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इलेक्ट्रोनिकी से सबसे अधिक सहायता मिलने की सम्भावना है। इससे ही इन भयानक और बहुत अल्प समय तक रहने वाले तूफानों का पता लगा सकते हैं। यह जानकारी बहुत आवश्यक है कि टौर्नेडो के बादलों की तड़ित-दीप्ति विशेष प्रकार की वायुमण्डलीय रेडियो की तरंगें छोड़ती है, जोकि असाधारण उच्च आवृत्ति की होती है। इन्हें स्फेरिक्स कहते हैं। ये साधारण गरज भरे तूफान (थण्डर स्टार्म) से प्राप्त स्फेरिक्स या स्टेटिक तरंगों से भिन्न होती हैं। स्फेरिक्स डिटेक्टर उन गरज भरे तूफानों का पता समय पर ही दे देते हैं जिनसे टौर्नेडो बन सकते हैं, ताकि आने वाले खतरे की सूचना आस-पास के लोगों को दी जा सके, जिससे कि वे सम्भल जाएँ। इसके अतिरिक्त रेडारों का प्रयोग टौर्नेडो के बन जाने के बाद उनके मार्ग की जानकारी प्राप्त करने के लिए पहले से हो रहा है। इस जानकारी से टौर्नेडो के रास्ते में पड़ने वाले लोग सुरक्षित स्थान पर चले जाते हैं।

प्रभंजन तूफान सबसे अधिक विनाशक माने गये हैं और टौर्नेडो सबसे अधिक उग्र। परन्तु गरज भरे तूफान ही अधिक पाये जाते हैं। यद्यपि वे अधिकतर गर्म वायु वाले स्थानों में तथा शीतोष्ण कटिबन्धों में, गर्मी की ऋतु में आते हैं, तथापि ध्रुवीय क्षेत्रों के लिए भी वे अपरिचित नहीं है। किन्तु उनकी संख्या तथा उग्रता उष्णकटिबन्धों में अधिक होती है। जावा में तीन सौ से अधिक साल में आते हैं। उष्ण अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के कुछ भागों मे ये तूफान वर्ष में सौ से भी अधिक आते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का दक्षिणी भाग गरज भरे तूफानी मेघों की प्रसिद्ध युद्धभूमि है। पैंसाकोला, फ्लोरिडा, मे सबसे अधिक ये तूफान आते है—वर्ष में लगभग नब्बे की औसत से।

सम्पत्तिनाश तथा मृत्यु सख्या के लिहाज से गरज भरे तूफान सबसे अधिक गम्भीर माने जाते है, क्योंकि इनकी सख्या और विस्तार कही ज्यादा होता है। जबकि प्रभजन का कई दिन पहले से पता लग सकता है गरज भरे तूफान के विषय में पहले से ही निश्चित कुछ नही कहा जा सकता। इतना तो निश्चित है कि ये तूफान मध्याह्नोत्तर समय मे तब अवश्य आते है जबकि किसी ग्रीष्म ऋतु के प्रात काल के समय अधिक गर्मी और आर्द्रता हो, परन्तु वे तूफान किस स्थान विशेष में आयेंगे यह पहले सूचित नही किया जा सकता। हो सकता है एक क्षेत्र मे तो सूर्य चमक रहा हो और उससे कुछ ही मील दूर हवा के जोर से वृक्ष जड़ से उखड रहे हों और घरों की छतों को उडाया जा रहा हो।

गरज भरे तूफान दो प्रकार के माने जाते हैं। एक तो अपने मे सीमित उपद्रव है जो गर्म वायु मे पैदा होता तथा बढता है। साधारणतया यह ग्रीष्म ऋतु के [illegible] समय मे आता है, जबकि पृथ्वी का पृष्ठ खूब गर्म हो चुका होता है।

दूसरे प्रकार का तूफान शीतल वायु पुंज के आगे के सिरे के पास होता है, जबकि वह गर्म क्षेत्र पर से अन्दर घुसता है। यह दूसरे प्रकार का तूफान वर्ष भर में किसी भी समय आ सकता है। शीत ऋतु की रात मे बिजली की कौंध के साथ गरज हो तो समझ लो कि यह शीत मोर्चा ऊपर से गुजर रहा है, जो इस तूफान का सूचक है।

गरज भरे तूफान पैदा होने के लिये गर्म तथा आर्द्र वायु की आवश्यकता होनी है। यदि वायु न चल रही हो तो शीघ्र ही यह तूफान बन जाता है। निःसदेह कुछ समय मे गरज भरे तूफान में हवा के तेज झोको के साथ छीटे भी पड़ते है, परन्तु प्रारम्भ में हवाएँ नीचे से ऊपर जाने वाली हवाओ के मार्ग मे बाधा पहुँचाती है, जिनसे उपद्रव पैदा होता है। इस प्रकार मे ये तूफान बन जाते हैं। जैसे कि और तूफानो की अवस्था मे होता है, ये तूफान भी उसी वायु से प्रारम्भ होते हैं, जो सूर्य की किरणों द्वारा गर्म कर दी गयी हो। जलपृष्ठ के विपरीत भूमि एक सी गर्म नही होती। एक मक्के का खेत, एक जगल की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाता है। एक घाटी किसी पहाड़ी क्षेत्र की अपेक्षा विभिन्न प्रकार से गर्म होती है। वायु का अधिक गर्म भाग ऊपर उठता है और अपनी इस यात्रा को आरम्भ करने के बाद वे तेजी से ऊपर चढ़ती हैं। इन हवाओ मे आस-पास के क्षेत्रो से हवाए आकर मिलती रहती हैं, और दस मिनट के समय में ही वायु का एक प्रकोष्ठ ऊपर चढ रहा होना है, जो कि तीन या इससे कुछ अधिक मील ऊचा होता है। यह प्रकोष्ठ एक तूफान के रूप मे दिखाई देता है।

बादल के ऊपरी भागो में ऊपर चढ़ने वाली हवा की चाल पैंतीस मील प्रति घटा तक पहुच जाती है। इसमें से गुजरता हुआ वायुयान उस हवा को क्षुब्ध तथा झटके पैदा करने वाला पाता है। भूमि पर वायु के अन्त प्रवाह से एक हल्की सी हवा पैदा होती है। यदि हल्की सी हवाएं उस क्षेत्र पर चलने लगें, जिस पर कि गरज भरा तूफान विकसित हो रहा हो तो, हवाए तूफान के एक ओर एक दूसरे को उदासीन कर देंगी और वहा तूफान से पहले की शान्ति दिखायी देगी।

ऊपर उठती हुई हवा जैसे ही ऊंचे और ठण्डे स्तरो पर पहुचती है उसमें उपस्थित आर्द्रता वर्षा की बूंदों के रूप मे द्रवित होने लगती है। जमाव बिन्दु के स्तर से ऊपर तीन या चार मील ऊपर बर्फ बनती है। शीघ्र ही ऊपर चढ़ने वाली हवाएं वर्षा तथा बर्फ के बढते हुए भार को वहन नहीं कर सकती। जैसे ही ये भारी बूंदें पृथ्वी की तरफ आने लगती है, अपने साथ कुछ आस-पास की वायु को खीच ले आती है जिससे कि उस प्रकोष्ठ के भीतर ही नीचे की ओर चलने वाली वायु की उत्पत्ति हो जाती है। नीचे की ओर चलने वाली यह वायु नीचे की भूमि के लिए वर्षा लाती है और प्रचण्ड तूफान मे ओले भी पड़ सकते है। ऊपर से नीचे आती हुई ठण्डी वायु तापक्रम को कम कर देती है। गरज भरे तूफान का यह एक विशेष गुण है। ऊप- जाने वाली और नीचे आने वाली हवाएं, हवा के बड़े तेज झोके पैदा करती जिनका गतिवेग भूमि के ऊपर पचास मील प्रति घटा होता है। बादलो मे

भी खूब चमकती है। गरज भरे तूफान का यह विकसित रूप पन्द्रह से तीस मिनट तक रहता है।

नीचे आने वाली हवाएं बढ़ती जाती हैं तथा ऊपर जाने वाली हवाएं कम हो जाती हैं। नीचे आने वाली हवाए जब प्रकोष्ठ के आर-पार फैल जाती हैं, तो तूफान को बढोनरी देने वाली वायु का रास्ता बन्द हो जाता है। प्रकोष्ठ के ऊपरी भागो में द्रवण बन्द हो जाता है और नीचे आने वाली हवाओं की गति कम हो जाती है। मूसलाधार वर्षा, जो पहले अधिक थी, अब घट कर एक हल्की टिकाऊ वर्षा मे बदल जाती है जो कि कई मिनट तक पड़ती रह सकती है। तब बादल बिखर जाते हैं, सूर्य चमकने लगता है और वायुमण्डल मे पहले जैसी स्थिति हो जाती है।

यद्यपि मानव ने परमाणु के टुकडे कर लिये हैं, समुद्र मे उपस्थित टापुओं को उडा दिया है, और पृथ्वी के इर्द-गिर्द कृत्रिम चाद चला दिये हैं, फिर भी आकाश को काला करने वाले तूफान से पहले वह कही दूर भाग कर अपने आपको छुपाना चाहता है। कब छिपा जाय यह बात जानने का इस समय सतत प्रयत्न हो रहा है। परन्तु इसके साथ ही तूफानों के बनने तथा बढने के विषय मे पूरी जानकारी भी प्राप्त की जा रही है। हो सकता है कि किसी दिन अनुसधान द्वारा तूफान का यह डंक पृथक् कर दिया जाय। परन्तु उस दिन का अभी आरम्भ ही हो रहा है।

छठा अध्याय

आकाश की विद्युत्

तड़ित् (आकाश की विद्युत्) की चमक एक सेकेण्ड के हजारवें भाग से भी कम समय के लिए रहती है। परन्तु यह क्रिया अनेक घटनाओं की जटिल शृंखलाओं का परिणाम होती है। आकाश और पृथ्वी के बीच हर रोज लाखों स्थानों पर होने वाली यह चमक इस बात का प्रमाण है कि सम्पूर्ण वायुमण्डल मे विद्युत् विद्यमान है। प्रकृति की एक बहुत उल्लेखनीय घटना होने के कारण बिजली अथवा तड़ित्, इतिहास के प्रारम्भ से ही मनुष्य मात्र में भय तथा कल्पनाओं का सचार करती रही है। यद्यपि अब हम जानते है कि बिजली न तो भूतो के आदेश द्वारा गिरती है और न रुष्ट देवताओं का ही इससे कुछ संबध है। ऐसा भी नहीं है कि यह अकस्मात् ही गिरती हो। वायुमण्डल से यह प्रकाण्ड विद्युतीय शक्तियों की पारस्परिक प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न होती है और प्रकृति मे शक्ति के सकेन्द्रित होने का एक प्रमुख उदाहरण है। तड़ित् अथवा बिजली तो वायुमण्डलीय विद्युत् का केवल एक पहलू ही है। हमारे चारों ओर होने वाले इस विद्युतीय नाटक के विषय में हम अभी तक बहुत कम जान पाये है।

वास्तव मे पृथ्वी एक अतिकाय विद्युत् जनित्र केन्द्र का एक इलैक्ट्रोड है। इसका दूसरा इलैक्ट्रोड आयनोस्फियर है, जो ऊपरी वायुमण्डल की विद्युत्-वाहक तह है। सामान्यतया पृथ्वी आयनोस्फियर के सन्दर्भ में लाखों वोल्ट ऋणात्मक विद्युत् से आवेशान्वित है। इस ससार मे निवास करने वाले हम लोग इन दो इलैक्ट्रोडों के मध्य में रहते हैं। अतः उनके पारस्परिक अन्तर के कुछ भाग का हम पर प्रभाव पड़ता है। साफ से साफ दिन में भी हमारे सिर वास्तव में ऊपर उठे हुए होने के कारण, हमारे पैरों की अपेक्षा दो सौ वोल्ट अधिक धनात्मक विद्युत् आवेश वाले क्षेत्र में रहते हैं। कुहरेदार ऋतु में सिर और पैर के वोल्टेज का अन्तर इससे दस गुना तक अधिक हो जाता है। धूल के तूफानों में, जो अर्द्ध-शुष्क और रेगिस्तानी क्षेत्रों में प्रायः आते हैं, यह अन्तर प्रति फुट तीन हजार वोल्ट तक हो जाता है, अर्थात् मनुष्य के सिर और भूमि के मध्य में अठारह हजार वोल्ट का अन्तर होता है। बादलों तथा वर्षा के मौसम में यह अन्तर बहुत परिवर्तनशील होता है—प्रति फुट कुछ सैकड़ों से लेकर पन्द्रह हजार वोल्ट तक का।

वायुमण्डल की विद्युत् का यह अनियमित व्यवहार दो तन्त्रों के मध्य रस्साकशी का परिणाम होता है। एक में विद्युत् बनती है तथा दूसरी में वह विद्युत् वह

जाती है। पहला तन्त्र अद्भुत् क्षमता का एक महान् पावर हाऊस है। हमारी पृथ्वी का विद्युत् आवेश (चार्ज) सम्भवतः एक घन्टे में ही खत्म हो जाय यदि इसे लगातार फिर से ताजा न किया जा रहा होता। इतना होने पर भी विद्युत् का यह चार्ज बना रहता है। इसमें इस बात के संकेत है कि भौगर्भिक समय में यह आवेश जैसा था वैसा ही रहा है। विद्युतावेश के बह जाने के लिए भी उतनी ही वैविध्यपूर्ण प्रणाली है। गरज के साथ आने वाले तूफानो की गतिविधि आकाश में एक बड़े पावर स्टेशन के समान है। वायु के अदृश्य अणु, जिन्हे आयन्स कहते है, और जिनमें से एक इलैक्ट्रोन कम या अधिक हो गया होता है, विद्युत् की सूक्ष्म मात्राओ को बखेरने के लिए वाहक का काम करते हैं।

प्रत्येक गरज भरा तूफान बिलक्षण वेग से विद्युत् उत्पन्न करता है। करोड़ों वोल्ट का अन्तर इस तूफान के ऊपर और नीचे के भागो मे होता है। चूंकि छः से आठ हजार गरज भरे तूफानो या तूफान प्रकोष्ठो, जो लगातार ही पृथ्वी के पृष्ठ के ऊपर आते रहते हैं, में से प्रत्येक एक घटे के लगभग रहता है, इसलिए प्रत्येक चौबीस घटे के समय में दो लाख गरज भरे तूफान आते है। इन सब तूफानों से एक सेकेंड में सम्भवतः सख्या मे एक सौ से ज्यादा या एक घटे में करीब तीन लाख विद्युत् दीप्तियाँ (चमक) पैदा होती है। प्रत्येक वार विद्युत् धाराएँ मुख्यत. ऋणात्मक आवेश वाली पृथ्वी में आती है, और लगभग उतनी ही धनात्मक आवेश युक्त धाराएँ अथवा आवेश तूफान से ऊपर उठते हैं और आयनोस्फियर के भण्डार मे जा मिलते है।

फिर भी जैसे ही ऐसा तूफान समाप्त हो जाता है, पृथ्वी का आवेश धीरे-धीरे निकल जाता है। वायु के एक घनइच मे एक लाख पचास हजार की सख्या मे उपस्थित आयन्स उस विद्युतावेश के वाहक बन जाते है, और इस प्रकार विद्युत् के निकल जाने में सहायक होते है। इतने बड़े आयतन मे वायु के साधारण अणुओं की संख्या अरबो-खरबो मे होती है, इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से उक्त सख्या भी वस्तुत. बहुत कम है। परन्तु यह वायु को सुचालक बना देने के लिए पर्याप्त है। यद्यपि आयन किसी निश्चित रफ्तार से नही उत्पन्न किये जाते, तथापि वायुमण्डल में ये विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओ द्वारा लगातार बनाये जा रहे है, ये प्रक्रियाएँ करने वालों में रेडियो-एक्टिव पदार्थ जो पृथ्वी मे बहुत विरल मात्रा मे लगभग सब जगह पाये जाते हैं; भूमि से निकल कर वायुमण्डल मे सम्मिलित हो जाने वाली रेडियो एक्टिव गैसें, अन्तरिक्ष (कासमिक) किरणें, सूर्य से प्राप्त "पराबैंगनी" (अल्ट्रावायलेट) प्रकाश तथा बिजली या तड़ित् सम्मिलित हैं। एक मील ऊपर या समुद्र पर कासमिक-किरणों का ही महत्वशाली प्रभाव होता है क्योंकि वहा प्राकृतिक रेडियो एक्टिविटी नाम-मात्र ही होती है।

आयनो के आवेशित होने के कारण, ये अन्य आवेशों से उसी प्रकार आक- ... या प्रतिकर्षित होते हैं जैसे कि एक साधारण इस्पात का चुम्बक दूसरे चुम्बक को .षित करता है या उससे प्रतिकर्षित होता है। उदाहरणार्थ जब एक धनात्मक

आयन स्वयं को ऊपरी वायुमण्डल में पाता है तो वह पृथ्वी के ऋणात्मक आवेशमय होने के कारण पृथ्वी की ओर खिच आता है। इसी प्रकार से भूमितल के पास का ऋणात्मक आयन ऊपर की तरफ धकेल दिया जाता है। इनमें से प्रत्येक जब आकर्षित करने वाली वस्तु तक पहुँच जाता है या स्थानांतरण के समय अपने से विभिन्न आवेश वाले आयन से टकराता है तब पृथ्वी के आवेश का बहुत ही छोटा भाग इलैक्ट्रोनो के आदान-प्रदान के कारण अलग हो जाता है। ससार भर में चौबीसों घन्टों में अरबों बार खेले जाने वाले इस नाटक से कभी भी पृथ्वी विद्युतीय उदासीनता को प्राप्त नही होती। जैसे कि बताया जा चुका है यह लगभग एक घंटे में ही उदासीन हो जाये यदि बिजली या तडित् एकदम बन्द हो जाय। परन्तु जबकि ताजा आवेश भूमि मे से बाहर निकल रहे होते है, तब तूफान भी आकाश मे घूम रहे होते है जो पृथ्वी में और विद्युत् आवेश भरते रहते है।

सामान्यतया वायुमण्डलीय विद्युत् धीरे-धीरे ही इधर से उधर ले जाई जाती है। जैसे कि हम देख चुके हैं वायु मे भारी सख्या मे उपस्थित आयनों की सहायता से एक समय मे एक इलेक्ट्रोन ही निकल पाता है। जब आकाश में गर्जनमेघ होते हैं, तो बादलो और पृथ्वी के मध्य आवेशों में अन्तर उससे कही अधिक होता है, जितना कि बादलों के समय पृथ्वी और आयनोस्फियर के बीच से होता है। इसके अतिरिक्त गर्जनमेघ और पृथ्वी के मध्य आयन अधिक गति से चल रहे होते है। जब पृथ्वी और बादल के मध्य आवेशो मे अन्तर दस करोड़ वोल्ट हो जाता है, जो कि हमारे घरों की बिजली के वोल्टेज से दस लाख गुना अधिक है, तो आयनों मे अत्यधिक वेग पैदा हो जाने के कारण उनमें तथा वायु के सामान्य अणुओं मे टक्कर होती है। इस टक्कर में नष्ट हुए आयनो की अपेक्षा बनने वाले आयनों की सख्या अधिक होती है। काबू से बाहर हुई द्रुतगामी न्यूक्लीयर प्रतिक्रिया के समान वायु का प्रतिरोध खत्म हो जाता है, तथा तीव्र विद्युतीय विसर्जन अथवा तडित् द्वारा बादल के तड़ित् भण्डार पूर्णतया या आंशिक रूप में खाली हो जाते है।

सामान्यतया हमे तड़ित् की एक चमक दिखाई देती है। परन्तु वैज्ञानिक अनुसन्धान से तडित् प्रहार के विषय मे कई नई-नई बातें ज्ञात हुई है। एक तड़ित् प्रहार की प्रकृति को समझने मे उच्च गतिवेग फोटोग्राफी बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इस कार्य के लिए प्रयुक्त किये गये कैमरे मे लैन्स शीघ्रता से गतिमान होता है, और इसलिये इसमें फोटोग्राफ घटना के घटित होने के साथ-साथ आते जाते हैं। एक सेकेण्ड के दस लाखवें भाग के अन्तर से हुई घटनाएँ भी उपर्युक्त प्रहार से फोटोग्राफ में आ सकती है, और उनका अध्ययन किया जा सकता है।

कोई तड़ित् प्रहार अकस्मात् ही नही हो जाता। सर्वप्रथम उस मार्ग का निर्धारण होता है, जिस पर आगे मुख्य विद्युत् धारा बहेगी। जब बादलों की वोल्टेज चरम-अवस्था पर पहुँच जाती है, तो आयनों की धाराएँ मेघतल से पृथ्वी की ओर जाती है, और इस प्रकार मार्ग अंकित करने की क्रिया निष्पन्न होती है। ये वायु

बनाती हैं और इस प्रकार आयनीकृत अथवा विद्युत्-चालक सेतु बनाती हैं। ये बेडौल पथ में पदश: चलती है। लगभग एक सौ फुट चलने के बाद इन धाराओं में कुछ सुस्ती आ जाती है और कुछ समय के लिए रुक जाती है, मानो कि कोई फौज अगले आक्रमण के लिए रुककर तैयारी कर रही हो। इसके उपरान्त यात्रा का प्राय: एक नवीन मार्ग चुना जाता है, और इस प्रकार तड़ित् बेडौल पथ पर चलती है। इस कूच में प्रत्येक बार विराम उच्च गतिवेग फोटोग्राफ की सहायता से सरलता से पहचाना जा सकता है, जो कि वास्तव में केवल एक सेकेण्ड के कुछ दस लाखवें भाग के आस-पास होता है। मेघ और पृथ्वी के मध्य में मार्ग बनाने वाली धाराओं की सम्पूर्ण यात्रा सम्भव है कि एक सेकेण्ड के सौवें भाग में हो जाती है। जैसे-जैसे ये धाराएँ उपर्युक्त विधि से कूच करती हुई पृथ्वी के पास पहुंचती हैं, उस क्षेत्र के आस-पास विपरीत आवेश एकत्रित हो जाते हैं। पृथ्वी पर इस आवेश की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि अन्य धाराएं पृथ्वी के ऊँचे क्षेत्रों से बाहर निकल पड़ती हैं।

जब एक अवरोही धारा एक आरोही धारा से टकराती है, तो विद्युत् की प्रचण्ड धारा या तड़ित् (बिजली) पूर्व-निर्धारित मार्ग पर जोर से चमक उठती है। इसका गतिवेग लगभग साठ हजार मील प्रति सेकेण्ड होता है। बादलों से पृथ्वी पर जब ऊर्जा विद्युत् के रूप में बहती है तो इसका सारा मार्ग प्रकाश से चमक उठता है। इस प्रकार तीव्र गति से चलती हुई विद्युत् धाराएँ ताप, ध्वनि तथा चुम्बकीय विद्युत् तरंगें भी उत्पन्न करती हैं। ये विशेष तरंगें रेडियो रिसीवरों में स्थैतिक तरंगों (स्टैटिक) के रूप में प्राप्त होती हैं। गर्जनमेघ की सम्पूर्ण ऊर्जा एक ही प्रकार में विसर्जित नहीं हो जाती, उस हालत में उसी मार्ग पर बार-बार विसर्जन होता है, जब तक कि उस बादल का सम्पूर्ण आवेश अस्थायी रूप में विसर्जित नहीं हो जाता। अधिक सक्रिय गरज भरे तूफान में विद्युत् विसर्जन की आपस में लगभग प्रति बीस सेकेण्ड बाद चमक होती है, परन्तु कभी-कभी गरज भरे तूफान के विभिन्न मार्गों में एक साथ जल्दी-जल्दी ऐसे विसर्जन की चमक होती है।

वास्तव में तड़ित् पट्टी साधारणतया एक से चार इंच तक चौडी होती है। इसका प्रमाण उन छिद्रों का व्यास है जो कि तडित् के मार्ग में आये पदार्थों में से गुजरने पर हो जाते है, अथवा उन जली हुई रेखाओं की चौड़ाई होती है जो कि तड़ित् गिरने के बाद पदार्थों पर शेष रह जाती है। एक औसत गर्जनमेघ में, जिसमें प्रत्येक बीस सेकेण्ड बाद विसर्जन होता है, निकलने वाली विद्युत् ऊर्जा की मात्रा की दर निरन्तर रूप में दस लाख किलोवाट होती है। एक औसत प्रहार पर पच्चीस हजार एम्पीयर की विद्युत् होती है। प्राय. यह साठ हजार एम्पीयर तक भी पहुंच जाती है। एक बार तो तीन लाख एम्पीयर तक की रिकार्ड की गयी है। यह ऊर्जा साठ वाट वाले छ: लाख विद्युत् लैम्प क्षणभर के लिए जला सकती है और एक औसत ॰५ प्रहार मे इतनी विद्युत् होती है कि कई हजार टैलीविजन सैट एक घंटे के लिए सकते हैं।

इस प्रकार से इन क्षणिक प्रहारों में संकेन्द्रित ऊर्जा की मात्रा अद्भुत कार्य कर सकती है। तडित् के गिरने से कई बार भूमि में खाइयां खुद जाती हैं, वृक्ष, टैलीफोन के खम्बे और चिमनियां जब तडित् के मार्ग में पड़ती हैं तो टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। वृक्षों का इस प्रकार से चिर जाना सम्भवत विद्युत् के प्रभाव से, पेड़ में उपस्थित जल के हाइड्रोजन और आक्सीजन में विभक्त हो जाने और बिजली की गर्मी से उनके मिश्रण में प्रचण्ड विस्फोट के कारण होता है। तडित् पट्टिका का तापक्रम पचास हजार अंश फारनहाइट तक पहुँच जाता है। धात्विक वस्तुएँ जैसे कि तारें, पाइप या कन्ड्यूट, जिनमें वृक्ष की तरह कोई गैसीय अवयव नहीं होते, कभी-कभी इतने ऊँचे तापक्रम तक गर्म हो जाते हैं कि वे सम्पूर्ण रूप में वाष्पों में परिणत हो जाते हैं। रबर से ढकी टेलीफोन की तारों में अन्दर की धात्विक तार तो कभी-कभी सम्पूर्ण रूप से अदृश्य हो जाती है, और ऊपर का रबर ज्यों का त्यों बना रहता है। सम्भवत ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि ताम्बे का केन्द्रीय तार ताप का सुवाहक होता है और उस ऊँचे तापक्रम पर रबर के, जो कि ताप का सुवाहक नहीं है, गर्म होने से पहले ही वाष्पों में बदल जाता है। इसी सदर्भ में एक महिला की कहानी प्रसिद्ध है, जो कि गरज भरे तूफान के समय एक खिड़की बन्द कर रही थी। तडित् की चमक के साथ ही उसके हाथ में पहनी हुई सोने की चूडी अदृश्य हो गई। उसकी कलाई पर एक नीले रग की वृत्ताकार रेखा बन गयी, परन्तु उसकी बाह जली नहीं।

तडित् के बाद की गरज उस विसर्जन के भयानक ताप के द्वारा वायु के एकदम प्रचण्ड विस्फोट के साथ फैल जाने के कारण होती है। तडित् जब पास ही गिरती है तो ध्वनि की एक तेज और दिल को दहलाने वाली कड़क होती है। चूंकि तड़ित् प्रहार एक मील लम्बा या इससे भी अधिक हो सकता है, और ध्वनि मुकाबले में कम गति से चलती है, अतः गरज कुछ क्षणों तक रह सकती है। जो आवाज पहले आती है वह चमक के समीप वाले भाग से, और जो कुछ समय पश्चात् सुनाई देती है वह दूर वाले भाग से आती है। मेघगर्जन का एकसा न होना, अर्थात् उसमे ध्वनि कभी कम या कभी अधिक होना कई कारणो से होता है। कुछ तडित् प्रहारो के शाखाओं के रूप में फैले होने से ध्वनि एक से अधिक स्थानों से तथा विभिन्न समयो पर सुनाई देती है। ये ध्वनियां यदि एक ही समय उत्पन्न हों तो विशेष रूप से ऊँची गरज सुनाई देती है। विभिन्न समयो पर लगातार आने से ध्वनि लम्बी हो जाती है। प्रतिध्वनि ध्वनि को लहरदार बना देती है। ऐसा विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रो मे होता है।

तड़ित् का विसर्जन सदा बादलो और पृथ्वी के मध्य ही नही होता अपितु दो बादलो या एक ही बादल के दो भागों के मध्य भी हो सकता है। बादल से बादल का विसर्जन प्रायः दूर तक पहुँच जाता है। दस से बीस मील की दूरी पर पहुँच जाना सामान्य बात है। तीस मील तक की चमक फोटोग्राफ की सहायता से रिकार्ड की जा सकी है। बादल से पृथ्वी पर आने वाले विसर्जन एक मील से अधिक लम्बे बहुत कम होते है। और जब किसी ऊँचे पहाड़ पर से गर्जनमेघ गुजरते हैं, तो एक

सौ गज लम्बी चमक भी उत्पन्न होती है। क्षैत्रीय प्रकाश, जो प्रायः हीट या शीट लाइटनिंग के नाम से पुकारा जाता है, और जो किसी उमसवाली ग्रीष्म सन्ध्या के समय क्षितिज पर प्रदीप्त होता है सम्भवतः 'बादल से बादल' तड़ित् विसर्जन होते हैं। ये क्षितिज से परे दूरी पर होने के कारण सीधे दिखाई नही देते और उनकी दूरी इतनी अधिक होती है कि उनकी गरज सुनाई नही देती।

तड़ित् तथा उसकी सहवर्ती घटनाओ को भली प्रकार समझना, यदि किसी और कारण से नही तो एक व्यावहारिक कारण से आवश्यक है—तड़ित् की विशेषताओं का ज्ञान आपके जीवन को बचा सकता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति इन्हे जान ले और इनके अनुसार सावधानी रखे तो अमेरिका में हर साल होने वाली पाच सौ या उससे भी अधिक मौतो को और कई सौ व्यक्तियों के घायल होने की घटनाओं को सम्भवत समाप्त किया जा सकता है। चूंकि भूमि से सम्बन्धित धाराएँ, जो कि तड़ित् प्रहार के नीचे का सिरा बनाती हैं, उभरे हुए और ऊपर की ओर निकले हुए स्थानो से ऊपर की ओर उठती है, इसलिए यह एक सामान्य ज्ञान की बात है कि जब गरज भरे तूफान आ रहे हो तो उभरे हुए स्थानों या ऊँचे खुले स्थानो से बचना चाहिये। पहाडी पर खडा एक वृक्ष विशेषकर तड़ित् को निमन्त्रण देता है। और इसी प्रकार समतल मैदान मे खडा हुआ एक अकेला वृक्ष भी खतरनाक है। गरज भरे तूफान के समय वस्तुत किसी पेड के नीचे शरण लेना सुरक्षित नही है। गोल्फ खेलने के ऊँचे नीचे मैदान बुरी तरह से भयानक सिद्ध होते हैं। खुले मैदान मे खडा व्यक्ति भी तड़ित् विसर्जन के लिए एक अच्छा छोर (टरमिनस) बनाता है। भूमि मे खुदी खाइयाँ या ऐसे ही अन्य गड्ढे वास्तव मे सुरक्षित स्थान होते है। प्रचलित धारणा के विपरीत वह व्यक्ति अधिक सुरक्षित है, जिसने वर्षा से भीगे कपडे पहन रखे हों अपेक्षाकृत सूखे कपडे वाले के। कपडे सूखे हों या गीले कोई भी मनुष्य तड़ित् का सीधा प्रहार होने पर बच नही सकता। परन्तु यदि तड़ित् आस-पास गिरे तो विद्युत् का कुछ भाग, जो अन्यथा व्यक्ति के शरीर मे से गुजरता, कपड़े गीले होने से बाहर से बाहर गुजर जायेगा, और कुछ सुरक्षा हो सकती है।

प्रायः जब पृथ्वी और आकाश मे वोल्टेज अन्तर बहुत अधिक हो, जैसा कि तड़ित् चमकने से पहले होता है, ऊँची नुकीली वस्तुओं, जैसे ऊँचे पेड़, पताकास्तम्भों तथा तड़ितदण्डों पर कोरोना विसर्जन होता है, जो कि "सेन्ट एलमो की आग" के नाम से प्रसिद्ध है। यह विसर्जन प्राय. दिन के समय दिखाई नही देता, परन्तु रात को एक भयानक तथा विलक्षण दीप्ति के रूप मे प्रदर्शित होता है। पुराने जमाने मे पाल या बादबान वाले जहाजों के मस्तूलो के ऊपर यह चमक प्राय. दिखाई देती थी। सेन्ट एलमो की आग का यह नाम भूमध्यसागर के जलयान चालकों के सरक्षक महात्मा सेन्ट एलमो के नाम पर रक्खा गया है, जो कि ईसा के तीन सौ वर्ष बाद हुए। आजकल यह चमक वायुयानो के पंखों तथा सामने चलने वाले पंखे के छोड की नोकों पर दिखाई [देती है]। ऊँचे पहाडों की चोटियों पर से जब गर्जनमेघ गुजरते हैं तो उनकी तलियाँ

पृथ्वी के समीप होती है और इस कारण विद्युतीय क्षेत्र बन जाते हैं, और उन अवस्थाओं मे बने विसर्जन बहुत तेज प्रकार के होते है। दक्षिणी अमेरिका मे एण्डेजग्लो के नाम से ये प्रसिद्ध है। वायुयान-चालक इन्हे कभी-कभी गलती से जगल में लगी आग समझ लेते है। आल्प्स पर्वतारोहियो ने प्रभावशाली पटपटाहट और अपने सिरो तथा अगुलियों से प्रकाशमान दीप्तियाँ निकलने की सूचना दी है। सिर के पास, जो दीप्ति प्रदर्शित होती है, वह एक (प्रभामण्डल) का रूप ले लेती हैं। इसको "दीप्ति चक्र" भी कहा जाता है। इसी प्रकार से बर्फ पर चढ़ने के लिए बनी कुल्हाडियों की नोकों पर भी ज्वाला दिखाई देती है।

स्वत सेन्ट एलमो की आग हानिरहित होती है, परन्तु फिर भी उससे बचना चाहिये क्योंकि यह इस बात की सूचक है कि वहाँ उच्च विद्युतीय क्षेत्र है और इसलिए तड़ित् गिरने के लिए एक छोर (टरमिनस) बन सकता है।

वायुमण्डलीय विद्युत् के सभी परिणाम सरलता से अनुभव नही किये जा सकते। जैसा कि पहले के अध्याय मे वर्णन किया गया था, तडित् वायु में नाइट्रोजन के यौगिक बनाती है। बहुत प्राचीन युग मे जबकि पृथ्वी के वायुमण्डल मे हाइड्रोजन, मिथेन, अमोनिया तथा अन्य वाष्प उपस्थित थे, उस युग मे नि सन्देह तडित् द्वारा और भी बहुत से यौगिक बनते थे। सम्भव है कि तडित् का हमारे जीवन के विकास के साथ कुछ ज्यादा सबन्ध रहा हो, जितना कि हम आजकल अनुभव कर सकते है। "जीवन की ज्वाला" एक ठीक ही लोकोक्ति है।

अब तक हमने लगभग उन्ही घटनाओं तथा प्रतिक्रियाओं का वर्णन किया है, जो कि गर्जनमेघ की तली और पृथ्वी के बीच होते है, क्योंकि ये बहुत अच्छी प्रकार से समझी गई घटनाएँ है। परन्तु प्रकृति के अपरिवर्तनशील नियमानुसार विपरीत आवेश वाली उतनी ही विद्युत् पृथ्वी में से बाहर निकलेगी जितनी कि पृथ्वी में जायेगी। विद्युत् के आवेश किस प्रकार गर्जनमेघो की चोटियो से निकलकर ऊपरी वायु मे चले जाते है, यह एक अनुमान का विषय है। यद्यपि तड़ित् की चमक के बादलो से ऊपर की ओर निकलने की सूचनाएँ मिली है, तथापि ऐसे विसर्जन सम्भवत: बहुत दुर्लभ है। अनुमान किया जाता है कि सैन्ट एलमो की आग के सदृश शान्त विसर्जन विद्युत् धाराओं को ऊपर की ओर ले जाते है। बादलों की चोटियो के ऊपर चमक का दिखाई देना इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है। इस दिशा मे एक अद्भुत उदाहरण प्रकाश के एक चमकीले गेंद का है जो बादलो की चोटी पर न्यूजीलैण्ड मे दिखाई दिया था। वह गोला चमक तथा आकार में न्यूनाधिक होता रहा। उससे बादलो की चोटियाँ प्रकाशमान हुईं और एक हरा सा श्वेत प्रकाश नीचे भी फैल गया। यह दृश्य पन्द्रह मिनट तक रहा। कई अन्य स्थानो पर भी उस समय बादलो की चोटियों पर प्रकाश दिखाई पडा, जबकि तड़ित् की चमक बादलो से पृथ्वी की ओर जा रही थी। तड़ित् के इस व्यवहार के विषय मे बहुत कुछ ज्ञातव्य है।

सातवां अध्याय

वायु के हानिकारक जन्तु

बादलों, धुएं तथा कोहरे से रहित वायु केवल कुछ गैसों से बना पदार्थ ही नही है अपितु इसमे अनगिनत ठोस तथा ठोस द्रव्य के अदृश्य छोटे-छोटे कण—विषाणु (वाइरस), बीजाणु (स्पोर), जीवाणु (बैक्टीरिया), पराग (पोलन), धुएँ तथा धूल के कण—उपस्थित रहते हैं। ये सब कण एलर्जी तथा रोग फैलाते है और मौसमी परि-स्थितियों को बदलते रहते है। वायु की तरह इन कणों का भी मानव जीवन पर बहुत प्रभाव पडता है।

प्रत्येक झाडी, वृक्ष, तथा प्राणी जो कि मर जाता है, गल सड कर धूल में जा मिलता है। उसका कुछ भाग चलती हुई वायु के झोको द्वारा उड़कर वायुमण्डल में जा मिलता है। हरे-भरे वृक्ष, घास-पात, झाड़ियां तथा अन्य सभी प्रकार की वनस्पतियां वायु में गोंद की शक्ल के द्रव्य के छोटे-छोटे कण, जिन्हे पराग कण अथवा पोलन कहा जाता है, फेंकती रहती है। बाढग्रस्त नदियाँ भूमि पर बारीक गाद की तह निक्षिप्त करती रहती है, जिसे वायु उड़ाकर वायुमण्डल मे बखेर देती है। समुद्र के किनारों पर चट्टानों से टकराती हुई लहरो का कुछ भाग बौछार के रूप मे वायुमण्डल में उठता है, जिसमें से जल वाष्पीभूत हो जाता है, और नन्हें-नन्हे नमक के क्रिस्टल रह जाते हैं, जो वायुमण्डल में बिखर जाते है। विस्फोट के समय ज्वालामुखी पहाड लावा तथा चट्टान के टुकड़ो के साथ, धूल व मिट्टी की बहुत मात्रा भी निकालकर वायुमण्डल में मिला देते हैं। जनसाधारण बोलने, खाँसने तथा छीक मारने के समय असख्य मात्रा में जीवाणुओ को वायुमण्डल मे बखेरते है। जंगलो मे लगी हुई आग, धूल-मिट्टी के तूफान और आँधियाँ वायु मे उड़ सकने वाले छोटे कणो को लाखों वर्गमील मे फैला देती है। उल्काओं के टूटने से प्राप्त धूल के सूक्ष्म कण वायुमण्डल में से होते हुए ही भूमिपृष्ठ पर आते है। मानव की औद्योगिक गतिविधियाँ कणों की सक्रिय उत्पादक हैं, किन्तु चूंकि वे नियन्त्रित की जा सकती हैं, अतः उन पर इस पुस्तक के आगामी अध्याय में वायुमण्डल की प्रदूषण-समस्याओ पर विस्तार से विचार के समय ही विवेचन किया जायेगा।

वायु में मिले हुए कणों में भौतिक, रासायनिक तथा जीववैज्ञानिक दृष्टि से बहुत अन्तर पाया जाता है। कणो के आकार-प्रकार तथा सख्या शायद सबसे महत्त्व-पूर्ण है। वायु द्वारा उड़ाये जा सकने वाले द्रव्य के कण कुछ तो इतने बड़े होते हैं कि जब वे किसी के गालो के साथ टकराते हैं, तो चुभते हैं। ये वायु द्वारा बहुत थोड़ा

हो जाते है। एक बार निक्षेपित होने पर वे या तो घुल जाते हैं और सम्पूर्ण शरीर में फैल जाते हैं, या फुफ्फुस की दीवारों में से गुजर कर रक्तवाहिनियों में रक्त के साथ बिना-घुले ही जा मिलते है। तीसरी अवस्था यह भी हो सकती है कि वे फुफ्फुस में ही रहे। यदि वे घुलते है तो घुलने वाले द्रव्य के विषैले होने पर हानिकारक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते है। जो कण रक्तवाहिनियों मे बिना घुले ही चले जाते है, वे बिना बदले ही यकृत तथा वृक्क या गुर्दे (किडनीज) द्वारा भली प्रकार पृथक् कर दिये जाते है परन्तु अत्यधिक मात्रा मे होने पर वे हानिकारक हो सकते है और घातक भी। जो कण फुफ्फुस के अन्दर रह जाते है वे फाईब्रोसिस (स्थायी तन्तु परिवर्तन) पैदा करते हैं। सम्भवत. यह सबसे अधिक भयानक स्थिति है। उदाहरण के रूप में चट्टानो की अघुलनशील धूलि मे लम्बी अवधि तक सांस लेने से असाध्य रोग सिली कॉसिस पैदा हो जाता है। जब तक धूल रोकने की उपयुक्त विधियाँ गत कुछ वर्षो मे काम नही लाई गई थीं, तब तक खनकों और चट्टान तोड़ने वालो को यह रोग विशेष रूप से हो जाता था।

यदि वायु पर्याप्त समय के लिए शान्त रहे तो बहुत सूक्ष्म कणो को छोड़कर शेष सब कण अपने भार के कारण ही भूमि पर आ बैठते है। इनका नीचे गिरने का समय कण-आकार से सबधित होता है। कोहरे का एक कण, जिसका व्यास एक सौ माइक्रॉन होता है, एक सेकेण्ड में लगभग एक फुट नीचे गिरता है, दस माइक्रॉन व्यास वाला इच का दसवां भाग और एक माइक्रॉन वाला विन्दुक एक इच के एक हजारवें भाग से कुछ ही अधिक गिरता है। इस प्रकार किसी कण के नीचे बैठने के वेग से यह विदित होता है कि कोई कण अपने मूल स्रोत से वायु के साथ कितनी दूरी तक उड़ाया और फैलाया जा सकता है। दस माइक्रॉन का एक कण यदि तीस फुट की ऊँचाई से गिरना आरम्भ करे और यदि पृथ्वी का भूमितल समतल हो तो वह कण बीस मील प्रति घन्टा चलने वाले हवा के झोंके के द्वारा छः मील तक ले जाया जा सकता है। इसके विपरीत एक माइक्रॉन व्यास का एक कण इन्ही अवस्थाओं मे छः सौ मील उड़ कर ही भूमि पर बैठेगा। चूंकि पृथ्वी का भूखण्ड अधिकतर बेडौल है यदि ऊपर तथा नीचे जाने वाली हवाएँ चलती रहें तो ऐसी स्थिति में कण शीघ्र अथवा देर मे स्थानान्तरित होते हैं और कम अथवा अधिक दूरी पर जा पहुँचते है।

फैलाव तथा मात्रा की दृष्टि से ज्वालामुखी पहाड़ों के विस्फोट से सबसे ज्यादा वायुवाहित धूल प्राप्त होती है। किसी विशेष रूप से भीषण विस्फोट से धूल की इतनी अधिक मात्रा वायु में मिल जाती है, जिसका अनुमान भी नही लगाया जा सकता। इसमे से कुछ धूल तो बहुत ऊँचाई पर पहुच जाती है। १८८३ ईस्वी में जब ईस्ट इडियन ज्वालामुखी पहाड़ 'क्राकाटोआ' में आधुनिक काल का सबसे भीषण विस्फोट हुआ था, उसमे कई घन मील मिट्टी धूलिकणो में बदल गयी, जो कि वायु में जा मिली। जहाँ पहले चौदह सौ फुट ऊँचा पहाड़ अठारह वर्गमील भूमि पर खड़ा था, उस स्थान पर एक हजार फुट गहरा गड्ढा बन गया। इस विस्फोट से उड़कर धूलि सत्रह मील की

ऊंचाई तक जा पहुंची और चारों ओर एक सौ पचास मील तक आकाश धुएँ से गहरा काला हो गया। कई दिनों पश्चात् धूलि इतनी अधिक मात्रा में सोलह सौ मील दूर उपस्थित जलयानों के डेक पर बैठी कि उसे कई बार बेलचों से साफ़ करना पड़ा।

धूलमय तूफान भी वायुवाहित धूल को उत्पन्न करते हैं। कुछ वर्षों के अन्तर से यूरोप मे रेगिस्तान से आई धूल गिरती रहती है। मार्च १९०१ ईस्वी में, अनुमानतः बीस लाख टन यह धूल यूरोपीय महाद्वीप पर निक्षिप्त हुई, और इससे कहीं अधिक धूल भूमध्यसागर तथा इसके परे के देशो मे अवश्य ही निक्षिप्त हुई होगी। लगभग दो वर्ष उपरान्त फरवरी १९०३ ईस्वी मे अकेले इग्लैण्ड पर ही एक करोड़ टन धूलि निक्षिप्त हुई ऐसा अनुमान है। कई बार विशेषकर १९४७ ईस्वी में यूरोप के दक्षिण-पश्चिमी भाग पर गदले पानी की वर्षा और लाल रग की बर्फ गिर चुकी है। इसका कारण भी सहारा की धूल ही था। कभी-कभी फ्लोरिडा के वायुमण्डल में लाल धूल कण दिखाई देते है। ये भी सहारा से उड़कर आये हुए प्रतीत होते हैं। ग्रीनलैण्ड मे लाल रग की बर्फ गिर चुकी है, और इसी प्रकार आयोवा मे गुलाबी रंग की बर्फ तथा कसास मे भूरे रंग की बर्फ के गिरने की सूचना मिली है। इन सब का कारण धूल ही है। १९३० ईस्वी के दशक मे सूखा पड़ने के समय मे एक करोड़ टन धूल वायु द्वारा उड़ाई जाकर मध्य पश्चिमी राज्यो के वायुमण्डल मे फैल गई थी। उच्च गतिवेग से चलने वाली हवाओं ने इस बोझ को एक मील तक उठाया और तब इसे चौबीस घंटों मे अठारह सौ मील की दूरी तक बिछाया।

ज्वालामुखी पहाडो तथा धूलमय तूफानों से हटकर यदि हम जलाशयों पर ध्यान दें, तो इनमे हम वायुवाहित कणों के एक और सूक्ष्म स्रोत पाते हैं। जब समुद्र की लहरो पर वायु का प्रभाव होता है या जब जलयान पर लहरों से बौछार पड़ती है, तो सूक्ष्म बून्दों का वाष्पीकरण हो जाता है और नमक के नन्हे क्रिस्टल शेष रह जाते हैं। वायु के झोंके इन्हें सम्पूर्ण ससार मे फैला देते हैं। ये क्रिस्टल उन समुद्रों से हजारों मील दूर और महाद्वीपों के मध्य के समीप पाये जाते है। आंधी अथवा प्रखर वायु के समय मे कई बार वायु इन लवण के क्रिस्टलो से बहुत लदी पायी गयी है। स्मरण रहे कि इगलैण्ड में समुद्र से एक सौ चालीस मील दूर की झाड़ियों तथा वृक्षों पर नमक जमा हुआ पाया गया था। कई बार उत्तर-पूर्व की शुष्क हवाएँ, जो न्यूजर्सी के तटों से अन्दर की ओर जाती हैं, इतना नमक अपने साथ उडा ले जाती हैं कि वह टेली-विजन एन्टेनाओं तथा बिजली के तारो के इन्सुलेटरो पर जम जाता है। किन्तु ये असाधारण घटनाएँ हैं। सामान्य रूप से समुद्र से प्राप्त नमक के कण एक माइक्रॉन से कम व्यास के होते हैं। दस लाख अरब ऐसे कणों का भार एक पौण्ड होता है, परन्तु ये कण मौसम बनाने मे विशेष भाग लेते है। ये जलचूषक होते है, जिसका अभिप्राय यह है कि उनमे वायु से जल को ग्रहण करने की क्षमता होती है। तुम्हारे रसोई-घर की नमकदानी में तो यह एक अवाछनीय गुण है, परन्तु वायुमण्डल में इसका ५ वर्षा है, जो फसलों, नदियों, जलप्रपातों के लिए बहुत आवश्यक है।

वर्षा की प्रत्येक बूंद चाहे वह अप्रैल की वर्षा से आये या वृष्टि विस्फोट से, एक नन्हें कण के रूप मे बनती है। कोहरे तथा बादल के प्रत्येक कण का एक केन्द्र होता है, जो कि अवश्य ही विशेष प्रकार का कण होता है। सम्भवत· यह समुद्र के नमक का एक नन्हा क्रिस्टल था, क्योंकि अन्य प्राकृतिक पदार्थों की अपेक्षा ये नमक के नन्हे क्रिस्टल अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। यदि समुद्र के नमक के नन्हें कण प्राप्य न हों तो उस अवस्था में धूल या धुएँ के कण उन बूंदो की नाभि या केन्द्र बन जाते है।

उपर्युक्त चर्चा से सुझाव मिलता है, कि कभी-कभी उल्काओं से प्राप्त धूलि भी ससार की वर्षा को प्रभावित कर सकती है। ऐसा पाया गया है कि उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में एक ही समय पर वर्षा की अधिकतम मात्राएँ गिरती है। इस प्रकार की विश्वव्यापी अत्यधिक वर्षा की जलवायु विज्ञान के आधार पर व्याख्या नहीं हो पाती, किन्तु यदि खगोलीय पिण्डों के प्रभाव को ध्यान मे रखा जाय तो कुछ व्याख्या सम्भव है। जब पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षा मे यात्रा करती हुई उल्काओं के झुंड के नजदीक पहुंचती है तो प्रत्येक उल्का पृथ्वी के वायुमण्डल के ऊपर के भाग से टकराता है, और उसमे आग लग जाती है और इस घर्षण द्वारा उत्पन्न ताप से वह जल जाती है। परिणामस्वरूप उल्काओं के अवशेष, सूक्ष्म धुएँ या राख के रूप में रह जाते है। 'तारों की धूल' फिर तैरती हुई निम्न वायुमण्डल के बादलो में मिल जाती है। यहाँ पर वह वर्षा की बूंदों या बर्फ के क्रिस्टल बनने के लिए नाभि या केन्द्र का कार्य करती है। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से होती है कि किसी उल्का समूह की पृथ्वी से मुठभेड के लगभग एक माह बाद वृष्टि मे वृद्धि होती है। यह समय उल्का धूल के ऊपरी वायुमण्डल में से निक्षिप्त होने के लिए पर्याप्त है। कभी-कभी बडे-बडे उल्का जलने पर धूलि की एक रेखा बनाते है। प्राय. यह रेखा एकदम ही अदृश्य हो जाती है। परन्तु कुछ एक ऐसी रेखाएँ भी दृष्टिगोचर हुई है, जो एक घंटे तक दिखाई देती रही है। एक बड़ा उल्का जो कि साइबेरिया की भूमि में १९०८ ईस्वी में टकराया था और जिसने कई वर्ग मील का क्षेत्र नष्ट कर दिया था, अपने पीछे एक धूलि का बादल सा छोड़ गया था जो कि छिन्न-भिन्न होने से पहले संसार के चारों ओर घूमता रहा।

वायु में मल पैदा करने वालों में जंगलों का काफी हिस्सा है, जहां आग लग जाती है। ऐसे समय में वायु के गर्म होकर तेजी से ऊपर चढने से जो तीव्र झोंके बनते हैं उनके साथ ही धुएँ के कण भी बहुत ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं। ये कण चूंकि बहुत छोटे होते है, अत. ऊपरी वायु के झोंकों द्वारा दूर-दूर तक फैला दिये जाते हैं। १९५० ईस्वी के अन्त मे अलबरटा, कैनेडा के जंगलों में आग लग गई थी जो देर तक रही। उसका धुआँ पूर्वी प्रान्तों, अमेरिका के पूर्वी राज्यों, इंगलैण्ड तथा यूरोप के अन्य भागों के ऊपर फैल गया।

वायु मे उपस्थित कणों से सम्बन्धित एक सूक्ष्म योजना द्वारा जंगल में लगने वाली प्रत्येक आग अपने आपको नष्ट करने के लिए परिस्थितियां भी उत्पन्न कर देती

है। कोई जलती हुई लकडी अन्य वस्तुओं के साथ-साथ जलवाष्प भी पर्याप्त मात्रा मे बनाती है। किसी भी बडी प्रचण्ड ज्वाला से जैसे कि जंगल में लगी आग है, उत्पन्न प्राप्त ताप से ऊपर चढने वाली वायु के शक्तिशाली झोंके पैदा होते हैं, जो आस-पास की वायु को खीच लेते है और अपने साथ उस वायु को, वायु मे उपस्थित जलवाष्प को तथा आग द्वारा उत्पन्न जलवाष्प और धुएं को बहुत ऊँचाई तक ले जाते है। वहाँ पर वायु ठण्डी हो जाती है और साथ मे उसके अन्दर के जलवाष्प भी। अब यदि वहाँ जलवाष्पो की पर्याप्त मात्रा उपस्थित हो, तो वे धुएं इत्यादि के कणो पर द्रवित हो जाते है, और वर्षा प्रारम्भ हो जाती है, जिससे आग का फैलना रुक जाता है और कभी-कभी तो वह बिल्कुल समाप्त ही हो जाती है।

प्रकृति ने अपनी सृष्टि को बनाये रखने के लिए कई प्रकार के प्रतिबन्धो, सन्तुलनो तथा सुरक्षा की योजनाएँ बना रखी है। दुर्भाग्यवश उसमे वायु में द्रव्य के कणो की सख्या मे वृद्धि हो जाती है। पराग कण जो कि बहुत से पौधो के नर समेचन तत्त्व है, सुन्दर फूल के मध्य मे पीले से रग के महीन चूर्ण के रूप में विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक पराग कण का कार्य एक अपनी जाति (स्पीशीज) की नारी प्रकोशिका को ढूंढना है। शहद की मक्खी तथा ऐसे ही कुछ अन्य कीडे कुछ प्रकार के परागों को बखेरते है। परन्तु यह बखेरने का कार्य अधिकतर वायु के झोंके भी सम्पन्न करते है। ये कण वायु मे इधर-उधर घूमते रहते है। एक अरब कणों में से सम्भवतः एक पराग कण को अपने लक्ष्य तक पहुचने का अवसर मिल पाता है। इसी कारण प्रकृति ने पराग कणो को बहुत सख्या मे उत्पन्न किया है। उदाहरणार्थ ऐसी रिपोर्ट मिली है कि कुछ झीलों का पानी साल के कुछ महीनो मे पीले रंग की पराग कणो की तह से ढक जाता है। ये पराग कण उन वृक्षो के होते है जो उस झील के आस-पास सैंकडों मील तक भी नही पाये जाते।

खेद है कि पराग कण लाखो व्यक्तियो के लिए एक जटिल समस्या उपस्थित करते है। इन एलर्जिक व्यक्तियो ने ऐसी शारीरिक रचना उत्तराधिकार में पाई है, जो शरीर में प्रविष्ट होने वाले बाह्य पदार्थो के विरुद्ध विद्रोह करती है। जब ऐसे पदार्थ श्वास द्वारा शरीर में प्रविष्ट होते है तो नासिका तथा गले की झिल्लिका में कुछ अन्य पदार्थ जिन्हे 'ऐण्टीबाडी' कहते है, बन जाते है। ये पदार्थ आंखो तथा श्वसन-प्रणाली के नाजुक ऊतको में उत्तेजना उत्पन्न करते है। इस प्रतिक्रिया की उग्रता पराग कणो की वायु मे उपस्थित मात्रा तथा उसमें मनुष्य के श्वास लेने की अवधि पर निर्भर होती है।

वसन्त ऋतु मे होने वाले "हे फीवर" (हे एक विशेप प्रकार का घास होता है) का सम्बन्ध प्रायः चिनार (पोपलर), देवदार (एल्म), भोज (बिर्च), द्विफल (मेपल) तथा ओक वृक्षो के पराग कणो से समझा जाता है। घास के पराग कणो के प्रभाव से यह ज्वर हो जाता है। ऐसे व्यक्तियो की पर्याप्त सख्या है जो गुलाब के पराग कणो ।८ ५८ जाते है। इस प्रकार हो जाने वाले ज्वर को एक विशेष नाम "रोज फीवर"

दिया गया है। घरों की साधारण धूल से बहुत से अभागे व्यक्तियो की नाक से पानी बहने का रोग हो जाता है जो कि जुकाम की तरह का होता है। उन्हे खाँसी होती है, आखे लाल हो जाती है और उनसे पानी बहने लगता है, गले की ग्रन्थियाँ सूख जाती है। साथ ही आमाशय तथा आँतों के रहस्यमय विकार तथा सिर दर्द भी पैदा हो जाती है। रोएदार खिलौनों, रीछ, खरगोश इत्यादि या अन्य कपड़े के बने हुए खिलौनों से खेलने वाले बच्चे प्राय. धूल से होने वाले रोगो से ग्रस्त रहते हे। पक्षियो के पखो से भरे तकिये या पुराने बिस्तर सिर दर्द पैदा कर सकते है। उन पर सोने से थकावट हो जाती है और नाक से पानी बहने लगता है। कुछ एक व्यक्ति इतने एर्लजिक होते है कि कुत्ते और बिल्लियों के बालों और त्वचा से गिरे कण उन्हे रोगी बना देते है।

पराग कणों के निकट सम्बन्धी बीजाणु (स्पोर) है। ये नन्हें कण हवा मे और बड़े-बड़े समुद्रों के ऊपर भी इधर-उधर तैरते रहते है। यद्यपि आकृति मे ये पराग कणों के सदृश होते हैं तथापि इनमे कई महत्वपूर्ण अन्तर हैं। बीजाणु, कवक (फगाई), खमीर (यीस्ट) तथा फफूंदी (मोल्डस्) के मूलजनक कण हैं। ये वास्तव मे बीज तो नही होते परन्तु करते वही कार्य हैं। कवक परिवार मे फफूंद, यीस्ट तथा कवक सम्मिलित किये जाते हैं। ये सब वानस्पतिक ससार के बहुत छोटे-छोटे सदस्य है, जो कि कुकुरमुत्ता के चचेरे भाई-बहन समझे जाते है। कवक की अनत उपजातिया हे, उनकी सख्या कम-से-कम एक लाख है। ये झीलो, पानी की धाराओ, समुद्र तथा भूमि मे भी पायी जाती है। इनके बीजाणु वायु में सात मील ऊचाई तक और सब समुद्रों मे पाये गये है। बीजाणु तथा परागकण उत्तरध्रुवीय तथा दक्षिणध्रुवीय वायुमण्डलो मे भी पाये जाते है, जहाँ पर वायु की धाराए उन्हें ले गयी है।

कवक के कार्य सरल तथा आवश्यक होते हैं। प्रकृति में ये गलने-सडने के कारण बनते है, जिनसे सब प्रकार के द्रव्य उन सरल रासायनिक पदार्थो मे बदल जाते है, जो उगती हुई वनस्पतियों के लिये आवश्यक है। इनके बिना सब प्रकार का जीवन रुक जाएगा, क्योंकि पुराने द्रव्यों को गलाने सडाने और वनस्पतियो के लिये नये भोजन बनाने के लिए ये आवश्यक हैं। दुर्भाग्यवश सभी कवक मृत पदार्थों पर जीवित नही रहते। कुछ एक जीवित वनस्पतियों तथा प्राणियों को अधिक पसन्द करते हैं। इनकी कुछ उपजातिया मक्का पर आक्रमण करती हैं, और कुछ अनाज पर। कुछ एक श्रेणियाँ फलदार वृक्षों को भी हानि पहुचाती है। मनुष्य में कैंसर की तरह ये वनस्पतियों की सम्पूर्ण शक्ति को निचोड लेती हैं, अन्यथा जिनसे दाने और फल बनते। कृषि में ये बहुत हानि पहुंचाती हैं, और मनुष्य स्वयं भी इनसे सर्वथा प्रतिरक्षित नहीं है। दाद, तथा एक विशेष प्रकार का एग्जीमा 'एथलिट फुट' इत्यादि त्वचा पर पनपने वाले बीजाणुओं से उत्पन्न (फंगाई) के कारण पैदा होते हैं। बीजाणुओ द्वारा श्वसन प्रणाली मे हो जाने वाले रोग बहुत कम हैं। यह एक प्रसन्नता का विषय है क्योंकि ऐसी व्याधियों की विश्राम के सिवा अन्य कोई चिकित्सा नही है।

यद्यपि अधिकांश कवक फैलने के लिए वायु की धाराओ पर निर्भर करते हैं, किन्तु कुछ एक ऐसे भी है जिन्हे प्रकृति ने फैलने के लिए विशेष तन्त्र प्रदान किये है, जिनसे वे अपने बीजाणुओ को दूर तक बखेर सकते हैं। एक प्रकार का फफूंद वायु मे एक छोटी-सी टिकिया-सी फेंकता है, जो फट जाती है, और उसमें से बीजाणु चिनगारियो के समान इधर-उधर बिखर जाते हैं। एक अन्य प्रकार का फफूंद बीजाणुओं को मशीनगन की तरह दूर फेंकता है। कुछ एक ऐसे भी हैं, जो लाखों बीजाणुओं को धुएँ की तरह से छोड़ते हैं। बाहर फेंके जाने की यह ऊँचाई एक इंच से लेकर छ. फुट तक की हो सकती है। एक बार वायुवाहित हो जाने के पश्चात् वायु की धाराओ द्वारा बीजाणु दूर-दूर तक ले जाये जाते हैं।

बीजाणु भी विशिष्ट रूप से सहिष्णु होते हैं। बहुत से तो अपनी शक्ति को वर्षो तक बनाये रखते हैं। उन पर आर्द्रता, तापक्रम और सूर्य के प्रकाश का कोई हानिकारक प्रभाव नही होता। सहायक परिस्थितियो में इनका प्रजनन-वेग विलक्षण होता है। जहाँ पर कि एक परागकण के अपने लक्ष्य पर पहुँच जाने से अधिक-से-अधिक केवल एक ही बीज बन सकता है, वहा एक बीजाणु अपने से कई गुना बीजाणु उत्पन्न कर सकता है। गेहूँ में स्टेम रस्ट रोग उत्पन्न करने वाले कवक का अकेला बीजाणु लाखो एकड़ भूमि पर उत्पन्न २० लाख पौधो मे से किसी एक पर गिर सकता है, और एक सप्ताह या दस दिन मे ही वहा पर एक लाख या इससे भी अधिक उसी प्रकार के बीजाणु पैदा कर सकता है। वानस्पतिक ससार मे "कोर्न स्मट" जो मक्का के पौधे पर लगता है, एक बहुत ही शीघ्र प्रजनन करने वाला फफूंद माना जाता है। इस रोग का अकेला एक बीजाणु किसी एक मक्के के पौधे के तने पर दो सप्ताह मे ही बीस से चालीस घन इच पिटिका बना देता है, जिसके प्रत्येक घन इच मे लगभग छ. अरब बीजाणु होते हैं। इनमें से प्रत्येक बीजाणु आदर्श अवस्थाओ में दो सप्ताहो में ही ऐसी एक और पिटिका बनाता है। अनुमानो के अनुसार यदि किसी मक्का के एक एकड के खेत मे दस प्रतिशत पौधे रोगग्रस्त हो तो वे पचास ट्रिलियन बीजाणु उत्पन्न कर सकते हैं। ध्यान रहे कि यह एक सुरक्षित अनुमान है क्योकि प्राय: बीस प्रतिशत पौधे रोगग्रस्त पाये जाते है। कुछ प्रकार के कवक में बीजाणुओं का यह विसर्जन मई मास से सितम्बर मास तक रहता है।

चूँकि बीजाणु दूर-दूर तक फैल सकते है, और इनकी सख्या अनगिनत है, तथा ये आसानी से नष्ट भी नही हो पाते इसलिए बीजाणुओं द्वारा होने वाले पौधो के रोगो का नियन्त्रण तथा निवारण कठिन होता है। कैनेडा मे उगने वाली गेहूँ की फसल को संयुक्त राज्य अमेरिका या उत्तरी मेक्सिको के बीजाणु वायु द्वारा दो दिन में ही एक हजार मील से भी अधिक दूरी तय करके प्रभावित कर सकते है। टसमान समुद्र पर से एक हजार मील की दूरी तय करके बीजाणु आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की फसल में एक ही समय मे एक ही रोग अक्सर फैला देते है।

धूलि कणों की अब अधिक संख्या मे उपस्थिति तथा बीजाणुओ की सहिष्णुता

नि.संदेह हानिकारक है परन्तु मनुष्य के लिए सबसे अधिक भयानक वायुवाहित जीवाणु (बैक्टीरिया) तथा प्रोटोजोआ हैं। बैक्टीरिया वानस्पतिक जीवन का लघुतम रूप है, तथा प्रोटोजोआ प्राणियों के पिछले दो या तीन दशकों में किये गये वैज्ञानिक अध्ययन ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि अधिकतम फैलने वाले और हानिकारक रोग, जो कि मनुष्य पर आक्रमण करते हैं, वायुमण्डल द्वारा ही प्रसारित होते है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वायु स्थानातरण का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम है। यह ठीक नही है। वास्तव मे वायु तो कई ऐसे माध्यमों मे से एक है। जल, भोजन तथा सीधा सम्पर्क बहुत प्रकार के जीवाणुओं की अवस्था मे पर्याप्त रूप से प्रभावशाली होते है।

वायु द्वारा संचरण का महत्त्व अब भली प्रकार समझा जाने लगा है। प्राचीन काल के लोग यह समझते थे कि संक्रामक महामारियो की स्रोत हवाएँ है। मध्यकाल की प्लेग के दिनो में समझा जाने लगा कि रोगी के साथ सीधा सम्पर्क होने से रोग फैलता है। उन्नीसवीं शताब्दी मे जैसे ही गैसों की रासायनिक रचना स्पष्ट रूप से समझी जाने लगी रोगी के श्वसन से प्राप्त गैसें रोग का कारण समझी गयी। एक शताब्दी पहले आँत सबंधी रोगो के सक्रमण के लिए पानी एक माध्यम माना जाता था। और फिर पचास वर्ष उपरान्त रक्त सक्रमण मे कीडे उत्तरदायी समझे जाने लगे। इस प्रकार जीवाणुओं को रोगों के सक्रमण के लिए "कारण" पाया गया, किन्तु रोगों के सक्रमण मे वायु का माध्यम होना प्रायः उपयुक्त नही समझा गया।

चिकित्सकों की एक पीढ़ी को यह शिक्षा दी जाती रही है कि रोगी के बोलने, छींक मारने तथा खासने से, उसके एक हाथ की दूरी पर ही रोगाणुओं से भरी बूंदें गिरती हैं, और पडी-पड़ी सूख जाती हैं। यह सिद्धान्त अब असत्य सिद्ध हो गया है। बहुत से रोगों के लिए जीवाणुओं से भरी वायु को सक्रमण का एक बड़ा स्रोत माना है अपेक्षाकृत रोगियों के साथ सीधे सम्पर्क के। रोगियो से प्राप्त ये नन्ही बूंदें वास्तव में उसी समय वाष्प हो जाती हैं, और पीछे नन्हें जीवाणु शेष रह जाते है, जो हवा मे उडने लगते हैं।

बीजाणुओं की तरह वायु मे पाये जाने वाले जीवाणुओं का बहुत छोटा भाग ही मनुष्य में रोग उत्पन्न कर सकता है, और उनमें से भी थोड़े ही रोगोत्पादक होते है, क्योकि सामान्य रूप में उन जीवाणुओ के प्रति मनुष्य में उच्च श्रेणी की प्रतिरक्षा सामर्थ्य होती है। सत्य तो यह है कि बहुत से बैक्टीरिया हमारे सेवक हैं, उदाहरणार्थ कुछ बैक्टीरिया वायु की नाइट्रोजन को पौधों के भोजन में परिवर्तित कर देते हैं। रोगोत्पादक जीवाणु विश्वासघाती शत्रु होते है। इनका प्रवर्धन, प्रविभाजन द्वारा होता है अर्थात् प्रत्येक तीस मिनट बाद एक जीवित कोशिका टूटकर दो कोशिकाएँ बनाती है। इन नयी कोशिकाओं में से प्रत्येक की वृद्धि होती है, और फिर वे टूटकर पहले की तरह दो कोशिकाओं में विभक्त होती जाती है। इस प्रकार आदर्श अवस्थाओं में इनकी संख्या प्रत्येक आधे घटे बाद दुगुनी हो जाती है। प्रवर्धन मे इतने विलक्षण [illegible] होने

का यह अभिप्राय है कि यदि इसे रोका न जाय तो एक अकेले बैक्टीरिया की संतति पांच दिनों मे इतनी हो जायेगी कि पृथ्वी पर स्थित सब समुद्रों के बराबर स्थान भर सकेगी। प्रकृति ने इसलिए ऐसे परिवर्धन पर प्रतिबन्ध लगा दिये हैं।

सौभाग्यवश वायु ऐसा माध्यम नहीं है जिसमे जीवाणु भली प्रकार पनप सकें। यदि वायु में आर्द्रता सही न हो तो बहुत से बैक्टीरिया सूख कर मर जाते हैं। वे सूर्य के पराबगनी (अल्ट्रावायलेट) विकिरणो के अल्पकालिक प्रभाव मे नष्ट हो जाते हैं। कम तापक्रम इनकी सक्रियता को बहुत कम कर देता है तथा ऊँचे तापक्रम इनको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं। फिर भी इनमे से कुछ बच निकलते हैं। बहुत अनुकूल परिस्थितियों मे कुछ जीवाणु महीनो तक पहनने के कपड़े, कम्बल तथा अन्य वस्तुओं के साथ चिपके रह सकते हैं, और मौका पड़ने पर वायु के जरिये पुनः संक्रमण करने योग्य हो जाते हैं। बोलने-चालने, खांसने और छीक मारने पर बहुत से बैक्टीरिया मुँह और नाक मे से निकल कर वायु में फैल जाते हैं, और यह सर्वथा सिद्ध किया जा चुका है कि उनमे से कुछ वायु द्वारा दूसरे व्यक्ति के मुँह और नाक में जा पहुँचते हैं। छीक मारने से जीवाणु सबसे ज्यादा फैलते हैं। एक छीक से मुँह और नाक मे से बीस हजार जीवाणु निकलते हैं।

जीवाणुओ से छुटकारा बहुत कठिन है। यद्यपि शहरों के बाहर गाव की वायु में तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम बैक्टीरिया उपस्थित होते हैं। जगलों की वायु मे तो इनकी उपस्थिति सिद्ध करनी भी कठिन है। पौधो और वृक्षो के पत्ते इनके लिए प्रभावशाली छन्ने का कार्य करते हैं। किसी सागर के ऊपर उपस्थित वायु मे ज्यो-ज्यों हम तट से समुद्र के अन्दर की ओर जायें तो वायु उत्तरोत्तर जीवाणुओं से अधिक रहित होती जाती है। नगरों की वायु मे जीवाणुओ की उपस्थिति बहुत अधिक होती है, परन्तु वहाँ भी जीते-जागते जीवाणु सख्या मे उससे कम ही होते है जितनी कि आशा की जाती है। सूर्य का प्रकाश तथा सूखना उनकी सख्या को शीघ्र ही बहुत कम कर देता है।

विषाणु जीवाणुओ से भी बहुत छोटे होते हैं, तथा निर्जीव रासायनिक पदार्थों और सजीव द्रव्य के मध्य पुल का काम करते है और इस प्रकार से इन दोनो अवस्थाओं से सबध रखते हैं। ये एक माइक्रॉन के तीन दसवें से लेकर सौवें भाग के बराबर होते हैं। बहुत बडा करके देखने पर ये गोल्फ गेंद के रोओं, किसी धागे के टुकडो या पेन्सिल के सिक्के के टुकडो की तरह दिखाई देते है। इनमे से मनुष्य तथा जानवरों मे सक्रमण करने वाले विषाणु लगभग गोलाकार होते हैं, परन्तु पौधों मे रोग उत्पन्न करने वाले विषाणु लम्बूतरे प्रतीत होते हैं। हमारे बहुत से भयानक रोग विषाणु द्वारा ही होते हैं। उनमे चेचक, पीत ज्वर (येलो फीवर), टाईफस और शिशु पक्षाघात (इनफेन्टाइल पैरालिसिस) रोग प्रमुख है। साधारण रूप मे ये रोग चीचड़ (टिक्स), जूँ (माईट), पिस्सू (फ्लीज) मच्छर और अन्य कीटो द्वारा संक्रमित होते हैं। परन्तु साधारण जुकाम, श्वसन तन्त्रों के अन्य सक्रमण और सम्भवतया शिशु पक्षाघात ..., खांसने और छीकने से वायु मे लगभग उसी तरह फैलते हैं जैसे कि

बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न रोग। इन्फ्लूएंजा उत्पन्न करने वाला विषाणु कण जीवाणु की तरह इधर-उधर फर्श पर महीनों तक पड़ा रह सकता है, और पुनः सक्रिय होकर रोग उत्पन्न कर सकता है।

विभिन्न प्रकार के कीट वायु में रहते हैं, जिनमें शहद की मक्खियां, घरेलू मक्खियां तथा पिस्सू आम हैं। चूंकि अपेक्षाकृत ये बड़े और दृढ़ शरीर के होते हैं अतः ये सब अपनी उड़ानें प्रायः खुद ही भली प्रकार नियन्त्रित कर सकते हैं। इसलिए ये प्रायः पृथ्वी तल से बहुत ऊँचाई तक कम जा पाते हैं। इसके विपरीत कम उड़ने वाले और बड़े पंखों के कीट भी हैं—जैसे मिज, ऐफिड तथा साइलिड, जो चौदह हजार फुट की ऊँचाई पर और समुद्र के तटों से कई सौ मील दूर पाये गये हैं। इसी प्रकार बिना पंखों के कीट जैसे चीटियां, जुएँ और मकड़ियां कई बार अधिक ऊँचाइयों पर भी मिली ह।

यह तथ्य कि ऊपरी वायु में लगभग सब प्रकार के कीट हैं, महत्त्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न करने वाला है। यद्यपि किसी भी राज्य में प्रविष्ट होने के लिए बन्दरगाह की भली-भाति निगरानी की जाती है, और अन्तर्राज्य यातायात पुलिस के नियन्त्रण में रहता है, तो भी स्वतन्त्र वायु में कीड़ो का आना-जाना रोका नही जा सकता और न ही नियन्त्रित किया जा सकता है। प्रशान्त महासागर तथा अन्ध महासागर चूंकि बहुत बड़े हैं इसलिए अमेरिका तक खतरनाक जीवों के पहुँचने की सभावना बहुत कम है। इसके विपरीत वेस्ट इन्डीज, सेन्ट्रल अमेरिका तथा मेक्सिको के पास होने के कारण उनसे जीव उडकर या वायु द्वारा उड़ाये जाकर किसी भी समय अमेरिका में पहुँच सकते हैं।

वायु मे कीटों के बड़ी सख्या में होने के अतिरिक्त कीट कण भी अधिक संख्या में उपस्थित होते हैं। उदाहरणार्थ पिनवर्म के अण्डे वायु से हल्के होते हैं और सरलता से वायु में इधर-उधर तैरते रहते हैं।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपने कक्ष मे घूमती हुई इन हानिकारक जन्तुओं का कुछ भाग वायु के साथ पीछे छोड़ जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक चलते हुए रेलगाड़ी के इजन से निकला हुआ धुआँ।

आठवाँ अध्याय

आकाश की रंगीनियां

संसार के सब दृश्यो मे आकाश का दृश्य सौन्दर्य, विस्तार और गरिमा में बढ़ चढ़कर है। एक रंगबिरंगा विराट् दृश्य जो कि अनन्त और भव्य है हमारे ऊपर के सारे वायुमण्डल मे फैला हुआ है। एक सुनहरी उद्दीप्ति पूर्व में ऊषाकाल होने की घोषणा करती है और पश्चिम मे लालिमामय आकाश सायंकाल के समय में दिन को विदाई देता है। मेघरहित आकाश के दिन के समय हमारे सिरों पर एक बहुत ही महीन पारदर्शीय शामियाने की भाति होता है। रात्रि के समय तारों की भव्यता और भी बढ़ जाती है जबकि आरोरा का प्रकाश बहुत ऊंचाई पर एक रंगीन परदा बुन देता है। शायद ही कोई ऐसा दिन हो जबकि आकाश में इधर-उधर घूमते रोयेंदार बादल एक जाल-सा बुनते प्रतीत न होते हों और कभी-कभी घने बादलों के इधर-उधर पर्यटन करते छोटे-छोटे बादल दिखाई न दे रहे हो, ठीक उसी प्रकार जैसे कि बच्चे अपने माता-पिता के इधर-उधर घूमते है। कभी तो गहरे श्याम वर्ण के वर्षा बरसाने वाले मेघ दिखायी देते है जिनके अन्दर से चमकदार रगों वाले इन्द्रधनुप फूट पड़ते है। कभी-कभी सूर्य एक सुनहरी छल्ला पहने हुए तथा चन्द्रमा एक रंगबिरंगा क्रास धारण किये दिखाई देता है। सूर्य कई बार अपना रग बदलता है, हरा हो जाता है और कभी-कभी अपने साथी सूर्यों के साथ दिखाई देता है। अपने चचल स्वभाव के कारण आकाश मे कभी अजीब प्रकाश दृष्टिगोचर होते है, कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि कोई जहाज उल्टा होकर समुद्र की लहरो के स्थान पर बादलों में तैर रहा है। कभी-कभी बिना आकार के पर्वतों की चोटियां दिखाई देती है।

आकाश एक विस्तृत हल्के नीले रग का गुम्बद है। ध्यान रहे कि नीला होना आकाश का प्राकृतिक गुण नही है, जैसा कि पहले समझते थे। ल्यूनार्डो दा विन्सी का सुभाव था कि आकाश का नीला रग दिन के समय के श्वेत प्रकाश और रात्रि के समय के अन्तरिक्ष के काले रग के मिलने से बनता है परन्तु श्वेत और काला रंग मिलकर, धूसर बनाते हैं न कि नीला। वायु मे उपस्थित ओजोन की तरह के घटको का भी यह प्राकृतिक रंग नही है जैसा कि उन्नीसवीं शताब्दी मे विचार किया जाता था और न ही यह किसी ऐसे प्रकाश के कारण है जो कि वायुमण्डल अपने मे से ही बाहर निकालता हो, क्योंकि उस अवस्था मे इसको रात के समय मे भी नीले रंग का ही [illegible] देना चाहिये। वायुमण्डल में बहुत ऊंचाई पर वायुयानों द्वारा उड़ने वाले

यानचालकों ने रंग के विषय में यह सुझाव दिया है कि यदि वायु पूर्णतया पारदर्शक होती या वायु अनुपस्थित ही होती तो आकाश काला दिखाई देना चाहिये था। चूंकि पृथ्वी पर से हमें काला दिखाई नही देता, अत आकाश के नीलेपन का कारण अवश्य ही सूर्य के प्रकाश का गुण और व्यवहार है जबकि प्रकाश वायुमण्डल के अवयवों से टकराता है या इसकी मुठभेड होती है।

सूर्य के विकिरण विभिन्न तरंगदैर्घ्यों वाली चुम्बकीय विद्युत् तरगे होते है। इनमे से दीर्घतरगदैर्घ्य वाली तरगो को हम ताप के रूप मे अनुभव करते है और लघुतरंगदैर्घ्य की तरंगो को हम रेडियो ग्राहको द्वारा पहिचान सकते है। हमारी आँखें प्रकाश तरगों की बहुत छोटी पट्टी या वैण्ड के लिए ही सुग्राही है जो कि स्पैक्ट्रम (वर्णपट) के केन्द्र के पास रहती है। इस पट्टी या वैण्ड को दृश्य प्रकाश कहते है। जैसे कि हमारे कान विभिन्न तरगदैर्घ्य की तरगो की आवाजो मे भेद कर सकते है, और हम विभिन्न प्रकार की आवाजें और शोर सभी कुछ सुन सकते हैं उसी प्रकार से हमारी आंखे विभिन्न प्रकार के तरगदैर्घ्य वाली तरगों मे भेद कर सकती है जिसकी वजह से हम विभिन्न प्रकार के रगो को और उनकी चमक-दमक को देख सकते है, अनुभव कर सकते है। इस दृश्य पट्टी के लघु भाग एक विशेष प्रकार का सवेदन उत्पन्न करते हैं जिसको हम बैंगनी रग के रूप मे पहचानते हैं। उत्तरोत्तर तरगदैर्घ्य वाले भाग क्रमश. जामनी, नीला, हरा, पीला, नारगी तथा लाल होते है। वस्तुओं के रग, जो कि हमे गुलाब के गहरे लाल रग से लेकर आरविड के हल्के बैंगनी रग तक नजर आते है प्रकाश की उन तरगदैर्घ्यों पर निर्भर है जिसमें हम वस्तुओ को देखते है। यदि गुलाब को ऐसे प्रकाश मे देखा जाय जिसमे कि लाल तरगदैर्घ्य वाली किरणे न हो तो वह लाल रंग का प्रतीत नहीं हो सकता।

यदि हम विभिन्न तरगदैर्घ्यों की तुलना छोटे-बडे विभिन्न आकार के फौजी जवानों से करें, जो कि व्यूह विन्यास मे मार्च कर रहे हों तो वायुमण्डल मे से गुजरने वाले प्रकाश के व्यवहार का ठीक अनुमान हो सकता है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम यह मान लेते है कि छोटे कद के बौने जवान नीले वस्त्रों मे, कुछ बडे साधारण जवान पीले वस्त्रों मे तथा अतिकाय जवान लाल वस्त्रो मे है। नि सन्देह ये दृश्य प्रकाश के विभिन्न तरंगदैर्घ्यों का क्रमश: प्रतिनिधित्व करते हैं। ये जवान यदि एक ऊबड़-खाबड़ चट्टानो वाले क्षेत्र मे से मार्च करे तो छोटे-बडे कद का होने से, अवश्य ही उनका व्यूह-विन्यास गडबड़ हो जायेगा। अतिकाय जवानों के कदमो की चाल मे कोई अन्तर नही आयेगा। औसत आकार के जवान, जिन्होने पीले वस्त्र पहन रखे है, अपने कुछ छोटे आकार के कारण कुछ ठोकर खाने के बाद उस क्षेत्र को पार कर जायेंगे। इसके विपरीत नीले वस्त्रों वाले बौने जवान ठोकर खाकर गिर पडेंगे और अपने रास्ते को उस सरलता से न पार कर सकेंगे जैसा कि अन्य दो श्रेणियो के जवानो ने किया है। चट्टानो के बडे पत्थरो को वे पार नही कर सकेंगे और उन्हे पत्थरो के चक्कर कर जाना होगा। यदि दूर से इस दृश्य का निरीक्षण करें तो यह विदित होगा कि

जवानो की अधिक संख्या क्षेत्र को पार कर चुकी होगी तो भी नीले वस्त्रों वाले बौने जवान ठोकरें खाते हुए दिखाई देंगे।

ठीक इसी प्रकार से प्रकाश के साथ होता है जब वह हमारे एक मील ऊंचाई के वायुमण्डल में से गुजरता है। अपेक्षाकृत दीर्घतरंगदैर्घ्यों की किरणें सरलता से इस वायुमण्डल को पार कर जाती है, कम तरंगदैर्घ्यों की तरंगों को वायुमण्डल के अणु इधर-उधर सब दिशाओं मे बखेर देते है। ये तरगें न केवल विचलित ही होती हैं, बल्कि इनमें से कुछ बिलियर्ड की गेंद की भांति बार-बार इधर-उधर ठोकर खाती हैं। इसलिये जब हम ऊपर की ओर देखते है तो हमे अधिकतर नीली लघु तरंगदैर्घ्यों की किरणें दिखाई देती है जो कि हमारी ओर इधर-उधर सब दिशाओं से आ रही होती हैं।

जब वायुमण्डल मेघ तथा धूलरहित स्वच्छ अवस्था में हो तो आकाश का नीला रंग दूर स्थित पहाड़ियो और हमारे ऊपर छाया प्रतीत होता है। यह नीला रंग वायु से भी आता है। वस्तुतः यदि पहाड़ियो पर जंगल हों और उनका रंग गहरा हो तो प्रकाश का अधिक भाग वायुमण्डलीय छितराव से आयेगा। जितनी दूर पहाड़िया होंगी उतना ही गहरा नीला रंग दिखाई देगा और वह वायु की अधिक मोटी तह के होने के कारण होगा। इस रंग की गहराई को अनजाने मे ही हम सम्भवतः किसी दूरी का अनुमान करने के लिये प्रयुक्त करते है।

यद्यपि साधारणतया आकाश हमे नीला दिखाई देता है तथापि अवस्था अनुसार वह अन्य रंग का भी दिखाई दे सकता है। आकाश का दिखाई देने वाला रंग उस द्रव्य पर भी निर्भर है जिसके साथ प्रकाश वायु मे टकराता है। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं बादलो के अतिरिक्त धूल तथा अन्य प्रकार के कण नीचे के वायुमण्डल मे सकेन्द्रित होते है। ये कण वायु के अणुओं से बड़े होने के कारण दीर्घतरंगदैर्घ्यों वाले प्रकाश को छितरा देते हैं। जब सूर्य सीधा हमारे सिर पर होता है, तो यह प्रभाव प्रायः महत्वपूर्ण नही होता, क्योंकि प्रकाश लम्ब रूप से धूलकण भरे वायुमण्डल में से कम-से-कम दूरी तय करके पृथ्वी पर पहुंचता है। परन्तु जब सूर्य क्षितिज के समीप होता है, तो इसकी किरणें वायुमण्डल में से टेढी गुजरती है, और इस प्रकार केन्द्र तथा अन्य कणों से भरी वायु मे से अधिक रास्ता तय करना पड़ता है। तब सभी तरंगदैर्घ्यों का छितराव हो जाता है। नीली किरणें पूर्णतः रुक जाती है, और केवल लम्बे तरंगदैर्घ्य-वाली लाल किरणें ही पार कर सकती है। सूर्य की दिशा मे आकाश इस प्रकार लालिमामय दिखाई देता है। वायु मे जितने अधिक धूलकण तथा मेघकण उपस्थित होंगे उतना ही गहरा रंग दिखाई देगा। ज्वालामुखी पहाड़ो मे विस्फोट हो जाने के पश्चात् धूल की बड़ी मात्राएं वायु में तैरने लगती हैं तब आकाश सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय विशेष रूप मे भयानक और रक्त के से रंग का दिखाई देता है। यह लाल सा रंग सूर्यास्त से बहुत पहले और सूर्योदय के बाद बहुत देर तक रहता है। बहुत ज्यादा होने पर एक भूरा सा प्रकाश सूर्य से चन्द्रमा पर भी पड़ता है। यदि कुछ धूल-तथा मेघ के सूक्ष्म बिन्दु वायु मे प्रकाश का परावर्तन करने के लिए उपस्थित न

होने तो सूर्योदय एकदम, और इसी प्रकार से सूर्यास्त भी उसी शीघ्रता से हो जाता और उषाकाल का सुहावना समय न होता। ऐसे ही सूर्यास्त के बाद सान्ध्य प्रकाश भी दिखाई न देता।

रात्रि के प्रदीप्त बादल वायुमण्डल मे उपस्थित महीन कणों पर जो सम्भवत: उल्कापातों से आते हैं, सूर्य के प्रकाश की क्रिया के कारण दिखाई देते है। कुछ खास कारणों से जिनकी अभी तक व्याख्या नही की जा सकी है, ये प्रदीप्त बादल उत्तरी गोलार्द्ध मे केवल पैंतालीस अश से साठ अश अक्षाश के मध्यवर्ती स्थानो से तथा दक्षिणी गोलार्द्ध मे भी इसी प्रकार इन्ही अक्षाशो के मध्य से दिखाई देते है। मई मास के मध्य से अगस्त मास के मध्य तक ये बादल अधिकतर देखने मे आते है। सूर्यास्त से पहले आकाश बिल्कुल स्वच्छ होता है। सूर्यास्त के पन्द्रह मिनट पश्चात् प्रदीप्त बादल बनने आरम्भ होते है और चादी के रंग की पट्टियाँ बनाते जाते है, जो कि क्षितिज के समीप सुनहरे पीले हो जाते हैं। तत्पश्चात् एक घटा या अधिक देर तक ये चमकते रहते हैं। इसके विपरीत साधारण बादल गहरे रग के होते हैं और उनमे से किसी प्रकार की चमक नहीं आती। इससे यह स्पष्ट है कि रात्रि के प्रदीप्त बादल सूर्य के प्रकाश मे स्नान कर रहे होते है। इसलिए प्रतीत होता है कि वे ऊपरी वायु मे पर्याप्त ऊँचाई पर उपस्थित होते हैं। साधारणतया यह ऊँचाई पचास और साठ मीलो के मध्य होती है।

जब हमारे और सूर्य के मध्य उपस्थित कण छोटे और लगभग एक आकार के होते ह, तो कुछ विशेष रग बन जाते है। जगलों मे लगी बडी आग से प्राप्त धुए के कण सम्भवत. इसी दशा मे होते हैं और इनके कारण ही सूर्य, बादलों मे घिरे चन्द्रमा की भाँति मद्धम प्रतीत होता है और रग मे नीला या हरा दिखाई पडता है। कैनाडा के जंगलों मे दूर तक फैली हुई आग से प्राप्त धुआं १९५० ईस्वी मे सारे यूरोप के ऊपर छा गया था, और कई दिनो तक सूर्य का रग नीला दिखाई देता रहा। ऐसी अवस्था मे मौसम के केन्द्रों तथा समाचार-पत्रो के कार्यालयो में घबराहटपूर्ण टैलीफोन सन्देशो का तांता लग जायेगा कि सूर्य या चन्द्रमा हरा या किसी और विशेष रंग का हो गया है, जो कि अवश्य ही भावी दुर्घटनाओं का सूचक है। वस्तुत यह कोई भय की बात नही है और इसका इतना ही अभिप्राय है कि एक से आकार के कण आकाश मे लगभग पाच मील की ऊँचाई पर तैर रहे होते हैं। जब पहले-पहल ये बनते है तो उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रो मे बादल नीले आकाश से भी अधिक नीले दिखाई देते है। कहा जाता है कि यह घटना उन्ही नन्हे सूक्ष्म बिन्दुओं के कारण होती है जो कि प्रारम्भिक बादलों में उपस्थित होते है।

वायु में उच्च ऊँचाई पर तैरते हुए एक से आकार वाले बर्फ के, क्रिस्टल, कुछ अन्य विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते है। शरद् ऋतु में कुछ दिन के साफ और चमकीले मौसम के पश्चात् जब उच्च ऊँचाई के बादल, जो कि पंखो की तरह हल्के और भंगुर होते हैं आकाश को श्वेत, दूधिया श्वेत बना देते है, तब चमकीले चक्र, जिन्हें

प्रभामण्डल "हैलोज" कहते है, सूर्य या चन्द्रमा के चारों ओर वृत्ताकार रूप में बन जाते हैं। चन्द्रमा के चारो ओर बने प्रभामण्डल मद्धम होते हैं, और इनके रंग लगभग अप्रत्यक्ष होते हैं। सूर्य हो या चन्द्रमा, यह घटना दुर्लभ नहीं है, यद्यपि बहुत से लोगो ने सम्भवत इसे कभी देखा नहीं है। ससार के बहुत से भागों मे, विशेषकर उत्तरी गोलार्द्ध मे शीतोष्ण अक्षाशो के क्षेत्रो मे, ये प्रभामण्डल ("हैलोज") औसत रूप में चार दिन मे एक बार दिखाई देते हैं। निरीक्षण करने वाले मौसम विशेषज्ञों ने इनको गिना है और उनके अनुसार एक वर्ष में दो सौ बार ये दृष्टिगोचर होते हैं।

पानी के जमने के तापक्रम से ऊपर के बादल तथा कोहरे पानी के नन्हें सूक्ष्म बिन्दुको के बने होते हैं, जो रंगीन दृश्य उपस्थित करते हैं। जब ये बिन्दुक आधे माइक्रॉन व्यास से कुछ कम के होते हैं, तो प्रकाश की तरगें उनके चारों ओर वैसे ही घूम जाती है जैसे कि समुद्र की तरंगें आगे निकली हुई चट्टानों के चारों ओर घूम जाती हैं। इन बिन्दुको के पीछे जहाँ ये तरगे मिलती हैं, वे एक-दूसरे के रास्ते मे प्रतिरोध उत्पन्न करती है और इस प्रकार रगो का पृथक्कीकरण हो जाता है। इसका परिणाम "कारोना" है। प्रकाश के स्रोत के चारो ओर ये सुन्दर चक्र उन प्रभामण्डलों की तरह होते है, जो चित्रों में सन्त महात्माओ के चेहरों अथवा शरीर के चारों ओर उनके सम्मानार्थ बनाये जाते है। चन्द्रमा और कुछ अधिक चमकने वाले तारो के चारों ओर भी कभी-कभी उस समय कारोना दिखाई देते हैं, जिस समय रोएंदार बादल उनके पास से गुजर रहे होते है।

"कारोना" मे कई साफ रगो के सकेन्द्रवृत्त भी दिखाई दे सकते हैं जिनमे से प्रत्येक अन्दर की ओर नीले रग का होता है, उसके ऊपर पीला सफेद और बाहर की ओर लाल भूरा सा रग दिखाई देता है। इनके व्यास प्रकाश के स्रोत से केवल कुछ ही गुणा बड़े होते है। बडे से बडे 'कारोना' अत्यन्त छोटे बिन्दुको से बनते है और रग सबसे चमकीले उस समय मे होते है जबकि बिन्दुक एक ही आकार के होते हैं। किसी साधारण विद्युत् लैम्प के चारो ओर भी कारोना दिखाई देता है जबकि उसे ठण्डी शरद् ऋतु की रात मे खिडकी के उस शीशे मे से देखें, जिस पर पानी की नन्हीं बूंदें जम रही हों।

साधारण इन्द्रधनुष प्रकृति के सुन्दर और आनन्ददायक दृश्य हैं। परन्तु इनके विषय में, कई अन्ध विश्वास की बाते प्रचलित है। हम मे से बहुतो ने लोकोक्तियों मे कहे गये सोने के पात्र के विषय में सुना होगा जो कि इन्द्रधनुष के किनारे पर पाया जाता है। कुछ लोग अब भी इस बात मे विश्वास रखते है कि इन्द्रधनुष की ओर यदि अंगुली से सकेत किया जाय तो वह अगुली अवश्य ही कट जायेगी, या इन्द्रधनुष की ओर सकेत करने वाली चीज पर तड़ित् गिरेगी। दक्षिण-पश्चिमी इडियन जातियां कभी इन्द्रधनुषों को बुरा समझती थीं, क्योंकि उनके विचारानुसार इन्द्रधनुष पानी का शोषण कर लेते हैं और इस प्रकार सूखा पडने लगता है।

इन्द्रधनुष पानी की बून्दों पर प्रकाश के पड़ने से बनता है। कभी-कभी कोहरे

के बिन्दुक भी इसका कारण होते है, परन्तु अधिकतर इसका कारण वर्षा की कुछ बड़ी बून्दें ही होती हैं। न तो बादलों के छोटे बिन्दुक और न हिम परतें ही कभी इन्द्रधनुष बना सकते हैं। यदि बर्फ गिरने के समय या साफ आकाश के दिन इन्द्र-धनुप बने तो यह निश्चित है कि वहाँ कुछ अर्ध पिघली हुई बर्फ है या वर्षा की बहुत हल्की-सी फुहार पड़ रही है, जो कि दिखाई नहीं दे रही। पानी की बून्दें जो कि इन्द्र-धनुप बनाती हैं, एक से डेढ मील की दूरी पर होती है, यद्यपि किसी गहरे रग की पृष्ठभूमि जैसे कि घने जंगल के सामने ये कुछ गज की दूरी पर ही देखी जा सकती हैं। नि.संदेह प्राकृतिक इन्द्रधनुप किसी पानी का छिडकाव करने वालों 'लान-स्प्रिकलर' या फव्वारे में से निकलती हुई पानी की बौछार पर प्रकाश डलने से कुछ फुट की ही दूरी पर दिखाई देता है। किन्तु इन्द्रधनुप किसी वास्तविक वस्तु की तरह किसी निश्चित स्थान पर नही होता, यह केवल किसी विशेष दिशा से आता हुआ प्रकाश है। यदि हम चलते हैं तो इन्द्रधनुप चलता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी समूह में ही क्यों न हो, एक भिन्न इन्द्रधनुप देखता है, और चूंकि प्रकाश का परा-वर्तन करने वाली बूंदें गिर रही होती है, इसलिए हम भी हर बार वर्षा की नयी बूंदों से बने इन्द्रधनुप देखते हैं।

एक वर्षा की बूंद के साथ टकरा कर प्रकाश आंशिक रूप से परावर्तित और आंशिक रूप से ही अपवर्तित हो जाता है ठीक उसी प्रकार जैसे कि वर्फ के एक क्रिस्टल के द्वारा होता है। बूंद चूंकि गोलाकार या उससे मिलते-जुलते आकार की होती है, कुछ प्रकाश को सब दिशाओं में प्रकीर्ण कर देती है, परन्तु एक विशेष तेज किरण जो कि रंग के अनुसार कुछ अलग हुई होती है, आने वाली दिशा में ही बया-लीस अंश का कोण बनाते हुए लौट जाती है। इससे कुछ कम तेज किरण रग के अनुसार पृथक्भूत लगभग इक्यावन अंश का कोण बनाती हुई वापिस हो जाती है। कम कोण से आने वाला प्रकाश प्राथमिक इन्द्रधनुप और बडे कोण से आने वाला प्रकाश द्वितीयक इन्द्रधनुप बनाता है, जो कि कभी-कभी दिखाई देता है। जब सूर्य बयालीस अंश से अधिक ऊंचा होता है तब इन्द्रधनुप का बनना सम्भव नहीं होता, क्योंकि अपवर्तित प्रकाश हम तक प्रेपित नही किया जा सकता।

इसी कारण विपुवतीय तथा शीतोष्ण प्रदेशों में प्रात काल तथा मध्याह्न काल के मध्य के समय में भूमि पर से इन्द्रधनुप दिखाई नहीं देते। परन्तु जैसे-जैसे सूर्य क्षितिज की ओर नीचे आता-जाता है, इन्द्रधनुप का अधिक भाग दिखाई देने लगता है, जब तक कि सूर्यास्त के समय बढ़ते-बढ़ते अर्धवृत्त इन्द्रधनुप नही बन जाता।

मेघ अपने आप ही विभिन्न प्रकार के अनेक कलात्मक आकार ग्रहण कर लेते हैं। प्रलयंकर तूफानी बादल तक अपनी भयंकरता में भव्य दिखाई देते हैं। कभी-कभी तो बादलों से ऐसी कलात्मक आकृतियाँ बन जाती है जो कि सम्भवतः उत्तम श्रेणी के मूर्तिकार ही बना सकते हैं। सुव्यवस्थित बादल पट्टिकाएँ, जिनके बीच-बीच में सा. आकाश की धारियां होती है, "बिलो, विन्डरो, रोल अथवा वेव (तरंग)

कहलाती हैं। जब बादलों की तह ऊपर चढ़ती हुई, तीव्र वेग वाली वायु में पहुँच जाती है, तो यह तेज वायु, बादलों को लपेट कर बेलनाकार रूप दे देती है। जब शुष्क या घने वायु एकाएक बादल की तह में चली जाती है तो उसमें एक छिद्र हो जाता है। यदि तेज गरज वाले तूफान के बादलों का ऊपरी भाग ऊपर उठती हुई वायु धाराओं से परे बढ़ जाय, तो उसमें भोन-सा बन जाता है जिसे "सैक क्लाउड" कहते हैं, गजरा बादल, या तकनीकी रूप मे इसको "मैमेटो कम्यूलस" भी कहते हैं। भंडा बादल पहाड़ की वायु सहित ढाल पर एक बडे श्वेत भण्डे के समान फहराता प्रतीत होता है। हवाएँ, जो पहाड से टकराती हैं, वायुरहित ढाल पर पहुँचते-पहुँचते शान्त हो जाती हैं, और उनका दाब बहुत कम हो जाता है। दाब के कम हो जाने से तापक्रम भी कुछ कम हो जाता है, परिणामस्वरूप इस बादल में यद्यपि निरन्तर वाष्पीकरण हो रहा होता है, फिर भी यह लगातार बनता भी रहता है। मूसराकार मेघ भी पहाड़ी क्षेत्रों के ऊपर बनते हैं। जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है ये लगभग नीचे से देखने मे गोल प्रतीत होते हैं, दूर से देखने पर आवर्धक लैन्स के समान मध्य मे मोटे और किनारो पर पतले दिखायी देते हैं। ये साधारण बादल ही होते हैं, जिन्हें कि पहाड़ों के ऊपर की तेज हवा की धाराएँ विशिष्ट आकृति दे देती हैं। जब सूर्य की किरणें सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय बादल पर से परावर्तित होती हैं तो उन बादलो के किनारे सुनहरी चमकने लगते हैं। कभी-कभी बादल आवर्त्त में घिर जाते हैं और गोल घूमने लगते हैं। बहुत ऊँचे उडने वाले वायुयान उडते हुए वाष्पों की धारा छोड़ते हैं, जो द्रवित होने पर बादल-सी प्रतीत होती है। इन्हे कन्ट्रेल कहते हैं। पहाड़ों की चोटियो और ऊँचे भवनो से नीचे उडने वाले बादल असाधारण दृश्य पैदा करते हैं। एक तूफानी बादल नीचे से देखने से केवल इसलिए काला दिखाई देता है क्योंकि उसमें उपस्थित जल की मात्रा सूर्य के प्रकाश को गुजर जाने से रोकती है। उसी बादल को जब ऊपर से देखा जाय या उस ओर से देखा जाय जहाँ सूर्य का प्रकाश पड रहा हो, तो वह सफेद और रोयेंदार फुलफुला बादल प्रतीत होता है, ठीक उसी प्रकार का जैसा कि एक साफ आकाश वाले दिन दिखाई देता है।

भव्य सूर्यास्त को छोडकर न तो किसी प्रकार की बादलों की रचना, न इन्द्रधनुष, न प्रभामण्डल और न कोई अन्य वायुमण्डलीय दृश्य ही आरोरा से तुलना कर सकता है। उत्तरी गोलार्द्ध मे इसे आरोरा बोरियेलिस या उत्तरी प्रकाश कहते हैं, और दक्षिणी गोलार्द्ध मे इसे आरोरा आस्ट्रेलिस या दक्षिणी प्रकाश कहते हैं।

उत्तर मे दिखाई देने वाले उत्तरी उपाकाल का नाम तीन शताब्दी पहले फ्रांसीसी दार्शनिक गैसेन्दी ने ठीक ही "आरोरा बोरियेलिस" रखा था। उत्तरी क्षितिज पर यह दृश्य प्राय. एक चचल प्रकाश और चमक के रूप में दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कि पहाड़ी के ऊपर आग जल रही हो और उसका प्रकाश मार्ग के वृक्षों मे से नाचता हुआ आ रहा हो। कभी-कभी वह चमक बहुत तेज हो जाती है और एक बडे प्रकाशसेतु का रूप ले लेती है, और कभी-कभी यह लटकते हुए

बड़े-बड़े पर्दों के रूप में दिखाई देती है । प्राय यह प्रकाशसेतु अत्यन्त सक्रिय हो जाता है, और इसका कुछ भाग लघु किरणों में और शेष घटने-बढ़ने वाले प्रकाश खण्डों में विसरित हो जाता है । इसके पीले से श्वेत रंग में लाल तथा हरे रंग का मिश्रण हो जाता है । जैसे-जैसे समय बीतता है, अन्य किरणें ऊपर की ओर उठती है, पीछे हटती हैं और कुछ समय बाद फिर बाहर निकल पडती है । सम्पूर्ण उत्तरी आकाश सुन्दर रंगों की पताकाओं तथा प्रकाश की पट्टिकाओं से आच्छादित दिखाई देता है । सक्रियता जब शिखर पर पहुच जाती है, तो प्रकाश की तरगे जो क्षितिज से निकल रही प्रतीत होती है, कम प्रकाश वाले खण्डों को तेज प्रकाशमय बना देती है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि बुझती हुई चिनगारियों पर से गुजरने वाली हवा का झोका । उक्त क्रिया का पीछे लौटना भी कोई कम आश्चर्यजनक नही है । प्रायः यह देखा जाता है कि जिस तरह से यह एकाएक विकसित होता है एक क्षीण प्रकाश की रेखा उत्तरी आकाश मे शेष रह जाती है जो कि बाद में कभी-कभी निर्बल किरण द्वारा फिर सजीव हो जाती है ।

'आरोरा'' की प्रदीप्ति सूर्य से निकले हुए सूक्ष्म कणों के, हमारे वायुमण्डल में प्रवेश करने से होती है । जैसी कि पहले व्याख्या की जा चुकी है ये कण हमारी पृथ्वी की ओर सैकडों अथवा सम्भवतः हजारों मील प्रति सेकेण्ड के वेग से आते हैं, और पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा ध्रुवीय क्षेत्रों मे पहुंचा दिये जाते है । ये कण विद्युतीय आवेश लिए हुए होते है, तभी चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा वे प्रभावित हो सकते है । सूर्य से आने वाले ये हमलावर कण वायु के अणुओं को उत्तेजित कर उन्हे प्रदीप्त कर देते है । यह घटना भूमि से पैंतीस मील की ऊँचाई से छः सौ मील की ऊँचाई तक घटती है । इस प्रकार आरोरा इन्द्रधनुष की तरह एक परावर्तन द्वारा बनी घटना नही है, और इसलिए इसकी स्थिति निरीक्षक के खड़े होने के स्थान पर निर्भर नही करती । किसी भी समय इसका प्रकाश वायुमण्डल मे उस स्थान से आ रहा होता है, जहाँ पर वायु को प्रदीप्त किया जा रहा होता है ।

वायुमण्डल के इस महान् सागर में कुछ अन्य दृश्य भी दृष्टिगोचर होते हैं, जिनका वर्षा की बूंदों, बर्फ के क्रिस्टलों तथा धूल के कणों से कोई सम्बन्ध नहीं है । कई दृष्टिकोणो से ये जादू के सबसे बड़े खेल है, यद्यपि इनका कारण बहुत सरल होता है। वायु का असमरूप से गर्म होना प्रकाश की किरणों को मुड़ जाने के लिए बाध्य कर देता है और वे विकृत होकर हमारी आंखों के सामने तरह-तरह का धोखा उपस्थित करती है ।

रेगिस्तानी क्षेत्र वायुमण्डलीय अपवर्त्तन के कौतुकमय दृश्य उपस्थित करने के लिए प्रसिद्ध है । प्रातःकाल वायुमण्डल की ताप सम्बन्धी अवस्थाएँ प्रायः इस प्रकार की होती है, कि यद्यपि वह क्षेत्र समतल होता है फिर भी वहां खड़े मनुष्य पर ऐसा प्रभाव पड़ता है जैसे कि वह एक घाटी मे खड़ा हो, जिसके चारों ओर की भूमि ऊँची होती है । इसके पश्चात् जैसे-जैसे सूर्य चढ़ता जाता है और पृथ्वी गरम होती जाती

है, ऐसा दिखाई देने लगता है कि मनुष्य एक सूखे टापू पर खड़ा है और चारो ओर अनन्त दूरी तक पानी ही पानी है।

बाइबल मे वर्णित इजराइल के बच्चों की रक्त सागर मे यात्रा से सम्बन्धित कहानी, जो कि रहस्यपूर्ण प्रतीत होती है, वास्तव में मरीचिका का ही उदाहरण है। मूसा के अनुयायियो को जो वस्तु पानी प्रतीत होती थी वास्तव में सम्भवत. वह एक मृग-मरीचिका ही थी क्योकि यह घटना रेगिस्तानो में जहाँ कि सूर्य भली प्रकार चमकता है, प्राय. घटती रहती है। रक्तसागर के उत्तर की ओर जाते हुए इजराइल के अनुयायियों ने सम्भवतः अपने आपको जल से घिरा हुआ अनुभव किया, जहाँ पर वास्तव मे कोई जल नही था। जैसे-जैसे वे आगे बढते गये पानी पीछे हटता गया। जब उन्होने मुड कर पीछे देखा, मिस्र की सेना पानी मे से चलती हुई प्रतीत हुई और जब मृग-मरीचिका का प्रभाव बढ गया तो वह दिखाई देनी बन्द हो गई जैसे कि इनसे डरकर भाग गई हो। मिस्र की सेना के लोगों को भी शायद इसी प्रकार से भ्रम हुआ हो। अपने पुराने दासों को मृग-मरीचिकाओ मे अदृश्य होते देखकर उन्हे इस बात का भ्रम हुआ कि वे डूब गये हैं और इसलिए वे वापस घर लौट गए।

प्रकाश की किरणे ही नही, रेडार के किरणपुंज पर भी वायुमण्डलीय विमार्ग-गमन का प्रभाव होता है, और इसलिए कई रेडार यन्त्र चालको को मृग-मरीचिकाओं द्वारा धोखा लगा है। द्वितीय महायुद्ध के दिनों मे जबकि रेडार एक नई वस्तु थी, कई बार युद्धपोतो को भूतप्रेतो से लडना पड़ा जिनका वस्तुत कोई अस्तित्व नही था। भूमध्यसागर में एक युद्धपोत ने एक रेडारलक्ष्य पर बमबारी की, जबकि न तो वह उसे डुबा ही सका और न ही कोई जबाबी तोपो के चलने की आवाज ही आई। इसके पश्चात् वह जगी जहाज जब उस लक्ष्य पर पहुंचा तो उसे समुद्र के पानी के अतिरिक्त कुछ नही दिखाई दिया। वहाँ पर वास्तव मे कोई जहाज नही था, जिस पर वह बमबारी करता रहा। परन्तु नये स्थान पर एक दूसरा रेडार संकेत मिला जो कि पहले जैसा ही और प्राय: उसी दूरी पर था। दूसरा माल्टा का टापू था, और जिस लक्ष्य पर पहले बमबारी की गयी थी, वह टापू का परावर्त्तन था।

मृग-मरीचिकाएँ जिस प्रकार भूमि पर दृष्टिगोचर होती हैं, इसी प्रकार हवा मे ऊँचाई पर भी घटती है। वायुमण्डल मे इन ऊँचे स्थानो पर घटने वाली मृग मरीचिकाओं से केवल मौसम से सम्बन्धित प्रकाश विज्ञान के विशेषज्ञ ही अवगत हैं। विभिन्न तापक्रम और आर्द्रता लिए वायु के छोटे-छोटे पुंज लगातार इधर-उधर गति करते रहते हैं। तारो का टिमटिमाना इसी कारण से दिखाई देता है। रात और दिन के मध्य बदलती हुई मौसमी अवस्थाओ तथा वायु पुंजों के भ्रमण के कारण से हजारो फुट की ऊँचाई पर विभिन्न तापक्रम की तहें बन जाती हैं। वायु की ऐसी तहें एक प्रकार के लेन्स का कार्य करती हैं और गहरे काले बादल की पृष्ठभूमि मे चमकते हुए ... को फोकस में ले आती हैं, या गहरा बादल चमकती पृष्ठभूमि पर अध्यारोपित ... है। वे किसी शहर की बत्तियों से आने वाले प्रकाश को क्षितिज से दूर फेंक

सकती है। वायु की ये तहें प्रकाश के निराले तथा टेढे-मेढ़े प्रतिबिम्बों को परावर्तित कर देती हैं, जो कि वास्तव में पहाडी सड़क पर चढ़ती हुई मोटरगाडी की बत्तियों का प्रकाश ही होता है। आजकल की बढती हुई वायुयात्राओ मे ऊँचे तलों पर मृग मरीचिका के कारण उत्पन्न हुए प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई सख्या मे देखे जायेंगे।

आकाश मे रहस्यपूर्ण वस्तुओं के अनेको उदाहरण है। १८६० के दशक के प्रारम्भ में इंगलैंड के तटों से कुछ दूर कुछ अद्भुत प्रकाश दिखाई दिया, जहाँ रेत के टीले थे। जलयान वहाँ गये और नष्ट हो गये। उस समय इसका रहस्य कोई नही जान सका। परन्तु आजकल हमे सन्देह है कि मृग-मरीचिका ही इसके लिए उत्तरदायी थी। कुस्तुनतुनिया के निवासी पहली नवम्बर१८८६ ईस्वी को यह देख कर बहुत चकित हुए कि एक बहुत ही तेज प्रकाश से युक्त कोई अण्डाकार वस्तु, जो चन्द्रमा से कई गुना बडी थी, आकाश मे तैर रही थी। यूरोप पर आकाश मे १८६३ ईस्वी और फिर १८९८ ईस्वी में दो वस्तुएँ दिखाई दी, जो आपस मे बँधे दो प्रकाश के गुब्बारे लगते थे। उन्नीसवी शताब्दी में फ्रांस के वैज्ञानिक साहित्य मे उडती हुई "गैस ज्वालाओं" के देखे जाने का वर्णन है और उनका जो विस्तृत विवरण दिया गया है वह लगभग वही है जो कि आजकल भूतप्रेतों का दिया जाता है। इससे भी पूर्व पन्द्रहवी तथा सोलहवी शताब्दियो मे वेल्स के पश्चिमी घाट के लोग विचित्र प्रकाशों को देखकर चकित हुए थे। जैसा कि पहले भी वर्णन किया जा चुका है ऐजेकील का चक्र भी ऐसी ही चीज थी।

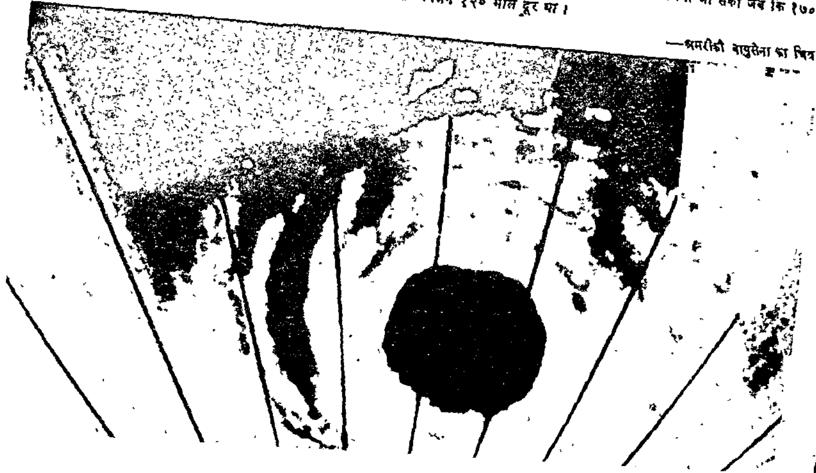
यद्यपि कहना अच्छा नही प्रतीत होता, फिर भी सचाई यह है जो कुछ हम देखते हैं, उस पर जो हम देखना चाहते है, उसका बहुत बडा प्रभाव पड़ता है। यदि यह बात न होती तो उड़न तश्तरियाँ इतनी प्रसिद्ध न हो जाती और न ही जादूगर लोग हस्त-कौशल से जीविकोपार्जन कर पाते। यह भी ठीक है कि हम उन्ही वस्तुओं को देखते हैं जिनसे कि हम परिचित होते है। हमारे लिए नई वस्तुओं को देख पाना कठिन होता है, चाहे वे ठीक हमारी आँखों के सामने ही क्यों न हों। यह जान कर कि हम क्या देखना चाहते है यदि हममें से कोई व्यक्ति आकाश की ओर अपनी आँखे उठाये तो उसे प्रकृति के बहुत ही उल्लेखनीय आश्चर्य देखने को मिलेंगे।

नवां अध्याय

आश्चर्यजनक तरंगें

वायु के इस विशाल सागर मे विचरते हुए हम इसमें गति पैदा किये बिना कुछ भी नही कर सकते। वस्तुतः हम आस-पास की वायु को इधर-उधर किये बिना एक दरवाजा तक नही खोल सकते और न ही प्यानो बजा सकते हैं। इसी प्रकार से एक जैट वायुयान भी नही उड़ सकता और न ही वायु को प्रकंपित किये बिना किसी वृक्ष से फल ही तोडा जा सकता है। इस प्रकार किसी भी वस्तु को हिलाते समय उसके आस-पास की वायु अवश्य ही गतिशील हो जाती है। जब इस प्रकार कोई वस्तु हिलाई जाती है तो उसके द्वारा हिलाई गई वायु में उत्पन्न हुई थरथराहट सब दिशाओं मे फैलती है। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न दिशाओं में गतिमान होते हुए कम्पन लगातार हमारे आस-पास आगे पीछे पैदा होते रहते हैं। विभिन्न दिशाओं मे गति करने वाले मे कम्पन अपेक्षाकृत एक दूसरे से स्वतन्त्र होते है। उनमें से बहुत से कम्पन बहुत ही हल्के होते है और कुछ सौ गजो तक ही जा सकते है। तथापि कुछ एक भयंकर उपद्रवों से उत्पन्न कम्पन सम्पूर्ण संसार मे फैल जाते हैं। जिस प्रकार संगीत के रूप मे वायु मे उत्पन्न हुए तारबद्ध कम्पन जंगली जानवरो को भी शान्त करने का जादू का सा प्रभाव रखते है, इसी प्रकार कोलाहल के रूप मे विषम कम्पन मानव को पागल तक बना सकते है।

'सैलो' (एक प्रकार का वायलन बाजा) के कम्पनशील तार की अस्पष्ट रूप रेखा हम देख सकते है। किसी बजाई गई घंटी को अगुलियो से छूकर उसमे उत्पन्न कम्पनों को हम अनुभव कर सकते है। इन कम्पनों से हम सरलता से देख सकते हैं कि वायु मे कम्पन किस प्रकार से पैदा होते है। सबसे पहले उस वस्तु के पास वाले वायु के अणु तीव्रता से दूर धकेले जाते हैं। तब वे तार या घंटी के पीछे हटने पर रिक्त हुए स्थान को पुनः भर देते है। और तार या घंटी के कम्पन के फिर आगे होने पर फिर वे उनसे दूर धकेल दिये जाते है। दूर उपस्थित वायु के अणु इन पहले विक्षुब्ध हुए अणुओ से प्रभावित होते हैं और उनके पीछे-पीछे उसी प्रकार से सेकेन्ड से भी कम अन्तर पर आगे पीछे होने लगते है। इस प्रकार उन कम्पनों के स्रोत के चारो ओर कुछ मण्डल से बन जाते है जहाँ कि अणु क्रमश. अधिक अथवा कम घने होते है, या दूसरे शब्दो में यह कहा जा सकता है कि वहाँ पर वायु का दाब तुलनात्मक दृष्टि से पहले



एक प्रभंजन (तूफान) का रेडार फोटो। अगनेस तूफान की, जो नवम्बर १९५२ में ओकिनावा पर आने वाला था, पूरी तरह बनी हुई पैंतीस मील चौड़ी "आंख" दिखाई दे रही है। रेडार से बादल संरचना का पता लग गया और यह फोटो लिया जा सका जब कि १७० मील प्रति घंटा की चाल से झपटता हुआ तूफान अभी ओकिनावा से लगभग १२० मील दूर था।

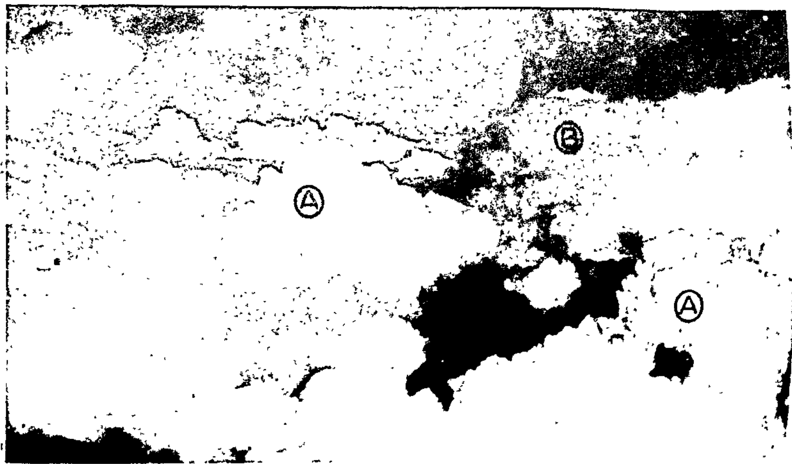
—अमरीकी वायुसेना का चित्र

सूर्य स्तम्भ। यह आविर्भाव योर्कशायर, इंग्लैंड, से सूर्यास्त के समय दिखाई दिया।

—सी० ए० वुड के सौजन्य से

सामान्य बादल निर्माण । A पर के रुई जैसे बादल जलकणिकाओं के बने हुए हैं उन्हें "बीज देकर" बदला जा सकता है । B पर के पतले बादल हिम क्रिस्टलों के बने हुए हैं । इन पर "बीज देने" का कोई प्रभाव नहीं होगा ।

—नेशनल रिसर्च कौंसिल, कनाडा, के सौजन्य से



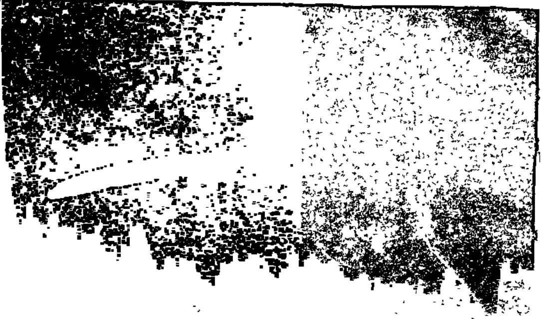
न्यूयार्क नगर के ऊपर दूषित वायु। धुएं और गंदी हवा का जो सघन अधिक घने बसे हुए और उद्योगों वाले क्षेत्रों पर मंडराता है, वह यहां स्पष्ट दीख रहा है।

—इंटर-स्टेट सैनिटेशन कमीशन, कनै०, न्यू० ज०, न्यूयार्क राज्य के सौजन्य से



ऊपरी वायुमंडल में राकेट सोडियम फेंक रहा है। ये चित्र तीस-तीस सेकेंड के अन्तर से लिये गये थे। सोडियम की मार्ग रेखा के मोर मुड़ने का कारण है विभिन्न ऊँचाइयों पर पवन वेगों का बदलना।

—जियोफिजिक्स रिसर्च डायरेक्टोरेट, एयर फोर्स कैम्ब्रिज रिसर्च सेंटर, एयर रिसर्च और डिवलपमेंट कमांड के सौजन्य से



अधिक हो जाता है और फिर कम । ये मण्डल दाब की तरंगों के रूप मे आगे बढ़ते हुए हमारे कानो पर ध्वनि के रूप में अंकित हो जाते है।

ध्वनि इस प्रकार वायु के अणुओं के तालबद्ध नृत्य की सामान्य अनुभूति होती है। इसके अतिरिक्त इन्द्रियो पर प्रभाव और वायु के विक्षोभ दोनो के कारण ही ध्वनि की अनुभूति होती है। यद्यपि सामान्यत: जो कुछ हम सुनते है उसी को ध्वनि कहते है तथापि इसको वायुमण्डल (अथवा पानी, लोहा, मृत्तिका इत्यादि मे) उत्पन्न हुए कम्पन भी समझा जा सकता है। पहली परिभाषा के अनुसार ध्वनि को सुनने वाला यह अनुभव करता है कि ध्वनि तभी होती है जबकि वह सुनी जा सकती है, परन्तु इसके विपरीत दूसरी परिभाषा के अनुसार ध्वनि किसी कम्पन करते हुए पदार्थ से आती है, चाहे उसको कोई सुनने वाला हो या न हो। जब दूर स्थित एक जगल मे एक वृक्ष गिरता है तो ध्वनि उत्पन्न होती है या नही ? वहां पर कम्पन तो पैदा हुए परन्तु उन्हे सुनने वाला कोई नहीं था। तो उसे ध्वनि का उत्पन्न होना समझा जाय अथवा नही ? यह ध्वनि की स्वीकार की जाने वाली परिभाषा पर निर्भर है। परन्तु यहाँ हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ही अपनाएगे, जिसके अनुसार वायु मे उत्पन्न हुए कोई भी कम्पन, चाहे सुने गए हों अथवा नही, ध्वनि कहलाते है। शान्त ध्वनि तथा अन्य वायुमण्डलीय कम्पनो का उस अवस्था मे ध्वनि शब्द की साधारण पारिभाषिक सीमाओं अर्थात् सुने जाने के बिना भी विचार किया जा सकता है।

वायुमण्डलीय दाब तरंगें (प्रेशर वेव्स) पानी के शान्त पृष्ठ पर दिखाई देने वाली तरंगों के ही सदृश होती है। खुले पानी में मछली पकडने के लिए एक पक्षी के गोता लगाने से बाहर की ओर फैलने वाली जो तरगे पैदा होती है, किसी ऊंचे पुल या पहाड़ की ऊंची चोटी से वे भली प्रकार देखी जा सकती है। समुद्र मे जाती हुई एक नौका शंखाकार तरंगें उत्पन्न करती है, जो कि बराबर अन्तर पर किनारे की तरफ बढती जाती हैं, और अन्य तरंगों को तिरछा काटती जाती है। यदि ऊंची चोटी से सागर को देखें तो हम बड़ी लहरों अथवा तरंगों को दूर क्षितिज से लुढकती हुई आती देख सकते हैं जिनकी चोटी झाग के कारण सफेद दिखाई देती है। तब हम लगातार तरगो की शृखलाए देख पाते है। इनमें कुछ बड़ी और कुछ छोटी, कुछ चौडी और कुछ तग, कुछ सीधी और कुछ वक्राकार होती है, प्रत्येक पानी के ऊपर इस प्रकार से लुढकती हुई चलती है जैसे कि सागर में अन्य लहरें न हों। यद्यपि पानी स्वयं ही किनारे की ओर जाता हुआ प्रतीत होता है, परंतु वास्तव में वह केवल ऊपर नीचे या आगे-पीछे हिल रहा है, और किनारे की तरफ नही जाता। किनारे की ओर तो ऊर्जा गति कर रही होती हैं जो कि सागर की तरंगों की हालत में बान्धो को भी गिरा देती है, ग्रेनाइट पत्थर की कड़ी चट्टानों को टुकड़े-टुकड़े कर देती है और बड़े-बड़े जहाजो को नष्ट कर डालती है।

वायु मे भी इसी प्रकार से वास्तविक रूप में ऊर्जा की तरंगें होती हैं परन्तु साधारण ध्वनि की ऊर्जा अविश्वसनीय रूप से थोड़ी होती है। एक करोड़ व्यक्ति यदि साधारण

रूप से बातचीत कर रहे हों तो उनके वाकृतन्तुओं से उत्पन्न कम्पन केवल इतनी ऊर्जा उत्पन्न करते हैं जितनी कि एक सौ वाट् बिजली का साधारण लैम्प प्रकाश देते हुए प्रयुक्त करता है। या ऐसा भी कहा जा सकता है कि पांच हजार स्त्रियां सम्पूर्ण वर्ष टेलीफोन पर बातचीत करती रहें तो केवल इतनी ऊर्जा उत्पन्न होगी जो एक गैलन पानी को खौलाने के लिए पर्याप्त हो। ऐसी लहरों या तरंगों का हम इसलिए ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं क्योंकि कान बहुत ही सुग्राही है, इतने सुग्राही कि हम वायु के अणुओं के आपस में लगातार टकराने से प्राप्त मर्मर ध्वनि को भी सुन पाते है। औसत श्रवणशक्ति वाला पुरुष इतनी सूक्ष्म ध्वनि की तरंगों का अन्तर कर सकता है जिनके दाब परिवर्तन एक वर्ग गज क्षेत्रफल पर सिर्फ एक औंस का दस करोड़वां भाग होते हैं। ऐसा वह केवल उसी अवस्था मे कर सकता है जबकि उपर्युक्त दाब इतना शीघ्र बदलता रहे। जब ध्वनि की बीस से बीस हजार तरंगे प्रति सेकेण्ड की संख्या में लगातार गुजर रही हो तो ध्वनि हमे श्रव्य होती है। छोटे बच्चे बडों की अपेक्षा अधिक तीखी ध्वनियों को सुन सकते हैं, अर्थात् ऐसी ध्वनियों को जो कि प्रत्येक सेकेण्ड मे अधिक तरंगें उत्पन्न करती हैं।

जीव, विशेषकर छोटे स्तनधारी, और भी अधिक तरंगों वाली ध्वनियाँ को सुन सकते हैं। उदाहरणार्थ एक कुत्ता अपने कान खड़े कर लेता है और ध्वनि सुन कर भौंकना प्रारम्भ कर देता है जबकि हमने कुछ सुना ही नही होता। उसके कान हमारे कानो से अधिक विकसित नहीं है, केवल उसके कान वायुमण्डल के उस नृत्य को सुनने के योग्य है जिनको हमारे कान नही सुन सकते। हम एक प्रकार से आंशिक रूप में ध्वनि के प्रति बहरे हैं, ठीक उसी प्रकार से जैसे कि कुछ व्यक्ति एक या अधिक रंगों के नही देख पाते। बिल्लियाँ, छोटे कुत्ते और गिनी-पिग कम-से-कम तीस हजार तरंग प्रति सेकेण्ड की ध्वनि को सुन लेते हैं। जबकि छोटे भूरे चमगादड, जो कि घरेलू चूहों से छोटे होते हैं, एक लाख तरंगें प्रति सेकेण्ड को भी सुन लेते हैं। दूसरी ओर बादल की गरज है। यह ध्वनि ऐसी तरंगो द्वारा आगे भेजी जाती है जो एक सेकेण्ड में एक सौ से अधिक नहीं होती। इसका बहुत-सा भाग वास्तव मे हम नही सुन पाते, जिसमें एक सेकेण्ड मे दो से पाँच लहरें तक होती है। इतनी कम वेग से चलने वाली तरंगो को कभी-कभी हम खिड़कियों तथा दरवाजों की सड़खड़ाहट से सुन पाते हैं जबकि तड़ित् [बिजली] अपेक्षाकृत निकट हो।

चूंकि ध्वनि वायु के अणुओं की गति का परिणाम होती है अतः यह वायु के अणुओं की गति से अधिक वेग से नही फैल सकती। सामान्य समुद्री सतह पर वायु के अणुओं का औसत वेग १२०० मील प्रतिघण्टा होता है। ये सब दिशाओं में यात्रा कर रहे होते हैं। परिणामी चाल (रिजल्टेण्ट स्पीड) जिससे कि ध्वनि यात्रा कर सकती है, इस संख्या के आधे से कुछ अधिक होती है अथवा लगभग ७६० मील प्रति घन्टा। वायु के अणुओं की चाल पर निर्भर होने के कारण ध्वनि का वेग स्थिर नही होता। ऊंचाई ‹ वायुमण्डल के तापक्रम में कमी या मौसम के परिवर्तन ध्वनि की चाल को कम

कर देते हैं। ३६,००० फुट की ऊंचाई पर यह चाल ७६० मील प्रतिघंटे से कम होकर केवल ६७० मील प्रतिघंटा रह जाती है। यह कमी तापक्रम की कमी के कारण होती है। ऊंचाई, खुद में तथा कम वायुमण्डलीय दाब ध्वनि की चाल पर किसी भी प्रकार प्रभाव नहीं डालता।

यह जान लेने पर कि ध्वनि एक निश्चित वेग से चलती है और हमारे कान ध्वनि के जिस तारत्व को अंकित करते है, वह उन ध्वनिक तरंगो की संख्या पर निर्भर होते हैं जो कि निश्चित समय में हमारे कानो तक पहुंचती हैं। हम अब समझ सकते है, जैसा कि प्रायः देखते है कि मोटर गाड़ी के हार्न या रेलवे इंजन की सीटी की आवाज में, जब वह हमारे पास से तेजी से गुजरती है, कैसे परिवर्तन मालूम पडता है। श्रोता तथा ध्वनि का स्रोत जब एक-दूसरे की ओर चल रहे हों तो ध्वनि की तरंगें अधिक संख्या में हमारे कानों तक पहुंचती है अपेक्षाकृत उस अवस्था के जबकि दोनों खड़े हों। उस अवस्था मे ध्वनि उच्च तारत्व की प्रतीत होती है। जैसे-जैसे श्रोता और ध्वनि का स्रोत एक दूसरे से दूर होते जाते है, उपर्युक्त के विपरीत होना है। निश्चित समय मे कम ध्वनि की तरंगें हम तक पहुँच पाती हैं और ध्वनि का तारत्व कम हो जाता है। इस घटना को इसके खोजी क्रिश्चियन डापलर के नाम पर 'डापलर प्रभाव' कहते है। इसका प्रतिपादन १८४२ ईस्वी मे कुछ तारों के रगों की व्याख्या करने के लिए हुआ था। तारों के रंगों के लिए यह व्याख्या अब स्वीकार नही की जाती, परन्तु ध्वनि के लिए इसका महत्व है और खगोलीय पिण्डों के दूसरे अध्ययनों मे यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

ध्वनि की तरगें प्रकाश तरंगों के समान सरलता से परावर्तित हो जाती है। यदि ऐसा न होता तो हम एक-दूसरे से तब तक बातचीत न कर सकते जब तक कि सीधे एक-दूसरे की ओर मुँह न किया होता। यह एक तथ्य है कि प्रायः कोई भी चिकना पृष्ठ ध्वनि के लिए उससे अधिक परावर्तक होता है जितना कि प्रकाश के लिए बहुत ही उत्कृष्ट रीति से बनाया गया दर्पण। श्रव्य ध्वनियों के तरंगशृंगों के मध्यान्तर आधे इंच मे साठ फुट तक होते है। उसके मुकाबले दृश्य प्रकाश के तरंगशृंगों के मध्यान्तर सिर्फ इंच के चालीस हजारवें भाग से लेकर अस्सी हजारवें भाग तक होते है। चूंकि परावर्तन करने वाले पृष्ठों की प्रभावशीलता परावर्तित किये जाने वाली तरगों की लम्बाई तथा पृष्ठ पर उपस्थित अनियमितताओं के सम्बन्ध पर निर्भर होती है, इसलिए एक ध्वनिक परावर्तक, जिस पर गहरे खांचे खुदे हुए हों उस प्रकाशीय दर्पण से अच्छा होता है जिसमें कि बहुत सूक्ष्म विकार उपस्थित हो। इसी कारण से छोटी वस्तुएँ ध्वनि की तरगों को बहुत कम रोकती हैं; तरंगें चारों ओर फैल जाती है और दूसरी ओर जाकर फिर मिल जाती है, मानो कि उनकी गतिविधि मे कोई विघ्न नहीं आया हो। ठीक उसी प्रकार जैसे कि पानी के पृष्ठ के ऊपर निकला हुआ एक दण्ड चारों ओर से आने-जाने वाली तरगों को रोकने के लिए प्रभावशाली नही होता, इसी प्रकार

अपने घास के मैदान में खड़ा हुआ एक पुरुष अपने आस-पास से गुजर जाने वाली ध्वनि की तरगों को नही रोकता है।

ध्वनि परावर्तन की एक अन्य घटना ने गुब्बारे पर उड़ने वालों को आश्चर्य में डाल दिया है। जबकि पृथ्वी पर उपस्थित व्यक्तियों का वार्तालाप गुब्बारे पर उड़ने वाला व्यक्ति भली प्रकार सुन व समझ सकता है, पृथ्वी पर उपस्थित लोग उसकी बात नही सुन पाते। यद्यपि वहां पर शान्त वायुमण्डल में सुनने के लिए उपयुक्त अवस्थाएँ होती हैं, फिर भी उसके पास कोई परावर्तन करने वाला पृष्ठ उपस्थित न होने के कारण ध्वनि ऊर्जा छिन्न-भिन्न हो जाती है अर्थात् व्यर्थ चली जाती है। इसके विपरीत पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ, गुब्बारे पर उड़ने वाले यात्री तक सीधी तथा परावर्तन द्वारा संचारित होती हैं। एक और बात यह है कि गुब्बारे पर उड़ने वाला तो अपनी ध्वनि की प्रतिध्वनि प्राय. सुन सकता है परन्तु पृथ्वी पर उपस्थित व्यक्तियों तक अपनी आवाज को नही पहुँचा सकता। यह प्रतिध्वनि शान्त जल पृष्ठ पर से अधिक जोर से उत्पन्न होती है तथा कुछ समय पहले हुए हिमपात के पृष्ठ से बहुत कम सुनाई देती है, क्योंकि हिम-क्रिस्टलों के मध्य आवाज शोषित हो जाती है। ध्वनि शोषण के कारण ही हिमपात के समय और उसके पश्चात् वातावरण असाधारण रूप से शान्त होता है।

प्रकाश तरंगों की तरह ध्वनि तरगें भी किसी असमान तापक्रम के वातावरण मे से गुजरने पर कुछ मुड़ जाती हैं अर्थात् अपवर्तित हो जाती हैं। किसी ग्रीष्मकाल के दिन जब भूमि और भूमि को स्पर्श करती हुई वायु गरम हो तो भूमि के साथ-साथ चलने वाली ध्वनि तरंगें, ऊपर के वायुमण्डल मे चलने वाली तरंगो की अपेक्षा अधिक गति से चलती हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि ध्वनियाँ ऊपर की ओर चलती है। ग्रीष्म के सायंकाल के समय पृथ्वी शीघ्र ही ठण्डी हो जाती है और उससे स्पर्श करती वायु भी। इस कारण ये ध्वनि तरगें ऊपर की अपेक्षा नीचे की ओर मुड़ जाती है। यही कारण है भूमि पृष्ठ पर श्रव्यता ग्रीष्म के सायंकाल के समय अच्छी होती है अपेक्षाकृत दिन के समय के।

प्रारम्भ से ही जनसाधारण उल्कापिण्डो के वायुमण्डल में से तीव्रता से गुजरने के कारण उत्पन्न विस्फोट जैसी ध्वनियों से आश्चर्यचकित होते रहे है। पैदल सेना के जवानों ने सदैव राइफल की गोली छूटने के समय पैदा हुई तीखी ध्वनि को सुना है और हममें से बहुत लोगों ने सर्कस मे शेरो के शिक्षको के लम्बे चाबुक की तीव्रध्वनि भी सुनी है। इन सब ध्वनियों के सबध मे एक बात एक जैसी होती है और वह यह कि ध्वनियाँ उस समय ही पैदा होती हैं जबकि कोई वस्तु ध्वनि की गति से अधिक वेग से गतिमान होती है। किसी वस्तु के अपेक्षाकृत कम गति से गतिमान होने की अवस्था मे ध्वनि तरंगें आगे की ओर धकेली जाती हैं, जिससे आगे उपस्थित वायु को आने वाली वस्तु का पता चल जाता है। पूर्वानुमान हो जाने से वह वायु जाने वाली वस्तु को रास्ता दे देती है। परन्तु जब कोई वस्तु उत्तरोत्तर तीव्रता से उड़ती है तो

उसकी गति अपनी वायुतरंगों की बराबरी करने लगती है, अर्थात् उसकी पहुँच की सूचना कम मिल पाती है। जब उसकी गति ध्वनि के वेग के बिल्कुल समान हो जाती है तो आगे की वायु को पीछे आने वाली वस्तु की सूचना नहीं मिल पाती है और इस प्रकार उसे इधर-उधर हटने का समय नही मिल पाता। ऐसी अवस्था में उसे गतिमान वस्तु के सामने एक वायु की "दीवार" उपस्थित हो जाती है, जिसके परिणाम-स्वरूप वहा ध्वनि तरंग अथवा दाब तरंग की उत्पत्ति होती है, कुछ सीमा तक उसी तरह, जैसे कि बर्फ तोड़ने वाले यन्त्र के सामने बर्फ का ढेर और पानी मे तेजी से चलने वाले जलयान के सामने पानी। वायु की इस दीवार को चूंकि उसे छिन्न-भिन्न होने का समय नही मिलता, इस कारण वहाँ ऐसी तरगें उत्पन्न होती हैं जो कि तीव्र कडाके की ध्वनियों को पैदा करती हैं। ऐसी तरगों को "प्रघाती तरंगें" (शाक तरंगें) कहते हैं।

ज्यों-ज्यों उच्च गति से चलने वाले वायुयान अधिक मात्रा में निर्मित किए जाने लगे, प्रघाती तरंगों का महत्त्व बढ़ गया। १९४३ ईस्वी मे जब "लाईटनिंग वायुयान" से डुबकी आदि लगाने के परीक्षण किये जा रहे थे, वायुयान मे तीव्र कम्पन हुआ और जोरदार झटके लगे। इस प्रकार प्रघाती तरंगों से होने वाली कठिनाइयों का संकेत मिला। उसके शीघ्र उपरान्त और अधिक तीव्रगति से चलने वाले वायुयान बनाए गए। वायुयान चालक उन यानों को अपने नियन्त्रण में नही रख सकता था। इसके पश्चात् वैमानिकी अनुसन्धान तथा विकास का एक आकर्षक चरण प्रारम्भ हुआ और अधिक तीव्रगति से चलने साले वायुयानों का आविष्कार हो गया जो कि सरलता से "ध्वनि दीवार" को तोड़ सके, और ध्वनि की गति से अधिक गति से यात्रा सम्पन्न कर सकें। इस सफलता के साथ नवीन समस्याएँ सम्मुख आयी।

१९५१ ईस्वी के जनवरी मास के प्रारम्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कैनेडा के विविध स्थानों पर कई छुटपुट विस्फोट हुए। खिडकियों के टूटने, घरो में रखे हुए वर्तनों तथा दीवारों पर लगी हुई तस्वीरो के गिरकर चूर-चूर होने की सूचनाए साधारण बात थी। अतिस्वन (सुपरसोनिक) वायुयानों का वायुमण्डल में डुबकिया लगाना तथा अन्य गतिवेग परीक्षाओं का होना इन घटनाओ का कारण पाया गया। ध्वनि से कम वेग पर वायुगति सम्बन्धी तथा यान्त्रिक कोलाहल की ऊर्जा वायुयान के आगे तथा पीछे की ओर फैल जाती है, परन्तु ध्वनि गतिवेग से ऊपर की चाल पर वायुयान के द्वारा उत्पन्न कोलाहल पीछे रह जाता है। ठीक ध्वनि वेग के बराबर की चाल पर इस प्रकार उत्पन्न कोलाहल वायु के साथ ही यात्रा करता है और जबकि यह गतिवेग बना रहता है ध्वनि अथवा दाब ऊर्जा एकत्रित होती रहती है। वायुयान की चाल के अधिक या कम हो जाने से इस प्रकार एकत्रित दाब ऊर्जा बाहर की ओर फैलती है और पृथ्वी तल को जा टकराती है, जिससे एक धड़ाका पैदा होना है, जिसे सोनिक बूम कहते है। प्रत्येक बार जब वायुयान गतिवेग तक पहुंचता है, एक धड़ाका पैदा होता है, यदि वायुयान अति॰

है तो एक धड़ाका तब होता है जब वह ध्वनिवेग तक पहुँचता है, और एक धड़ाका तब होता है, जब वह अव स्वन (सब सोनिक) वेग पर लौटता है।

"सोनिक बूम" की शक्ति, वायुयान के ध्वनि गतिवेग पर उड़ते रहने के समय पर निर्भर करती है। गणनानुसार यदि कोई वायुयान बीस सेकेण्ड तक ध्वनिक गति से उड़ता रहे तो परिणामी धड़ाका बम की शक्ति तक पहुँच जाता है। जिस ऊँचाई पर वह यान ध्वनिक गतिवेग से उड़ता रहता है, उसका भी शक्ति से सीधा सम्बन्ध होता है। ऊँचे तल पर न केवल वायुमण्डल विरल होता है अपितु दूरी भी ऊर्जा तरंग पर प्रभाव डालती है।

यह आश्चर्यजनक है कि धमाके और ध्वनिक तरंगों के संबंध में जो ज्ञानोपार्जन हुआ है उसका बहुत सा भाग फोटो चित्रों द्वारा प्राप्त हो सका है। चूंकि ऐसी तरगें वायु मे घनीभूत और विरलित मण्डल बनाती हैं और चूंकि विभिन्न घनत्वों की वायु असमान रूप से प्रकाश का अपवर्त्तन करती है अतः विशिष्ट रूप से व्यवस्थित कैमरों और प्रकाश से तरगों को अंकित किया जा सकता है। एक उच्च वेग से छूटी गोली वैसी ही तरगें उत्पन्न करती है जैसी कि किसी जहाज से पैदा होती है। एक "माडल" जैट यान के वायवीय सुरंग में उड़ान से प्राप्त तरंगों से वैज्ञानिक यह जान लेते है कि इसी प्रकार के बडे यान वायु में किस प्रकार से आचरण करेंगे। चित्रों की सहायता से तोपखाने द्वारा दागे गये गोलों और ज्वालामुखी पहाड़ों के विस्फोटों की ध्वनि तरगों को धुंधले प्रतिबिम्ब के रूप मे आकाश में गति करते हुए देखा जा सका है।

यन्त्रीकृत सभ्यता के निरन्तर बढ़ते हुए कोलाहल से निपटने तथा इसको नियन्त्रित करने की एक बड़ी गम्भीर समस्या हमारे सामने है। कोलाहल का हमारे शरीर पर निश्चित प्रभाव होता है। आकस्मिक और ऊंची आवाजों का हमारी शारीरिक क्रियाओं पर वही प्रभाव होता है जो कि लड़ाई का होता है। कोलाहल में अधिक देर तक रहने से हमारे आन्तरिक कान के तन्त्रिका समूह निर्बल हो जाते हैं और वे अपनी सुग्राहिता उसी प्रकार से खो बैठते हैं जैसे कि लगातार हाथ का काम करते रहने से हथेली कठोर और असवेदनशील हो जाती है। निरन्तर कोलाहल मे रहने से यद्यपि हम उसके आदी हो जाते हैं फिर भी वह रक्तचाप और हृदय-गति को बढ़ा देता है और इस प्रकार हमारी कार्यक्षमता को कम कर देता है। एक बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठान के कार्यालय मे होने वाले कोलाहल को जब पन्द्रह प्रतिशत कम कर दिया गया तो मशीनो के चालकों द्वारा की जाने वाली त्रुटियां बावन प्रतिशत कम हो गई, अन्यमनस्कता सैंतीस प्रतिशत कम हो गई तथा कर्मचारियों के कार्य मे अड़तालीस प्रतिशत वृद्धि हो गई। एक और उदाहरण में, पुर्जों को जोड़कर मशीनें बनाने का स्थान जब बायलर के पास से हटाकर दूर स्थित शान्त वातावरण में ले जाया गया तो उसी निर्धारित समय मे बनाई जाने वाली मशीनों की संख्या ८० से ११० बढ गई और होने वाली त्रुटियों की संख्या ६० से गिरकर ७ रह गयी।

विक्षुब्ध करने वाली ध्वनि के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है। अब हम ऐसी ध्वनियो के विषय मे विचार करते हैं जो कि हमारे लिए पूर्णतया अश्रव्य है। सम्भव है उस ध्वनि का सबसे उल्लेखनीय प्रयोग चमगादडों, दक्षिणी अमेरिका के कुछ विशेष पक्षियों, चूहों, मार्मोसैट प्राणियों एवं ऐसे ही दूसरे छोटे जन्तुओ द्वारा किया जाता है। पराश्रव्य तरंगों (अल्ट्रासोनिक वेव्ज) की सुग्राहिता चमगादडो मे तो बहुत ही विकसित हुई प्रतीत होती है। पंख वाले छोटे चूहे के आकार के ये प्राणी अधेरी गुफाओं तथा अटारियों में पाये जाते हैं। पूर्णत. अन्धे होने पर भी ये स्तनधारी जन्तु गुफा के अधेरे मे भी इधर-उधर उड सकते हैं और मार्ग मे पड़ने वाली बाधाओ तथा अन्य सैकडो चमगादडो से टकराते नहीं हैं। ये बहुत ही लघु ध्वनियाँ छोडते हैं जो कि बाधाओं से टकराकर प्रतिध्वनि रूप में वापस आती हैं। इस प्रकार ये प्रतिध्वनियाँ चमगादडो का उनकी उड़ान में मार्गदर्शन करती हैं जैसे कि एक रेडार वायुयानो का नियन्त्रण करता है।

एक चमगादड से उत्पन्न होने वाली पराश्रव्य ध्वनि मे एक टिक भी होती है जो कि केवल एक सेकेण्ड के पाच सौवें भाग के सूक्ष्म समय तक ही रहती है। ध्वनि की सामान्य गति को ध्यान मे रखें तो इसका यह अभिप्राय हुआ कि पहली ध्वनि तरंगें तब चमगादड की नाक से लगभग दो फुट दूर होती हैं जबकि अन्तिम टिक की पराश्रव्य ध्वनि पैदा होती है। यदि कोई वस्तु तीन फुट दूर होती है तो उसकी प्रतिध्वनि चमगादड को होने वाली टक्कर के विषय मे सूचित करने के लिए ठीक समय पर पहुँच सकती है। परतु चमगादड़ें उड़ते समय कभी-कभी इससे भी बहुत कम दूरी पर एक-दूसरे की टक्कर से बचती हुई देखी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समस्या के समाधान के लिए लगातार वे अपनी टिक को बदलती रहती है और इस प्रकार से उनके किसी भी भाग से आने वाली प्रतिध्वनि से अनुमान लगा लेती हैं। चमगादड की ध्वनि की तीव्रता भी उतनी ही आश्चर्यजनक होती है जितनी कि उसकी लघु अवधि और उसके स्वर का उतार-चढ़ाव। चमगादड़ के मुँह के सामने कुछ ही इंच के अन्तर पर ध्वनि-दाब जमीन के नीचे चलने वाली रेलगाडी के किसी स्टेशन के पास से गुजरते समय होने वाली आवाज से दस गुना हो सकता है।

अपने आस-पास के वातावरण पर नियन्त्रण स्थापित करने की इच्छा करने वाला मनुष्य उन ध्वनियों की उपेक्षा नहीं कर रहा है जो कि उसके लिए अश्रव्य है। ये उच्चतारत्व वाले कम्पन कई विलक्षण और निराले कार्यों के सम्पादन की आशा दिलाते है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इनकी सहायता से औद्योगिक नगरो मे धुएं तथा कोहरे से मुक्ति पाई जा सकेगी। जीवाणुओं का विनाश, वनस्पतियों की वृद्धि को उत्तेजित करना तथा इन कम्पनो के विलक्षण तापोत्पादक प्रभाव कुछ एक ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएं है जो इनके द्वारा सम्पन्न की जा सकेंगी। यद्यपि इस दिशा मे बहुत सफलता अभी तक प्राप्त नही की जा सकी है, फिर भी कुछ विलक्षण कार्य सम्पन्न किये गये है। पराश्रव्य सायरन द्वारा कुछ कीड़ो तथा चूहों को मारा जा सका है। मधुमक्खी पालको ने कुछ ऐसी ध्वनितरगों का पता लगाया है जिनके प्रभाव

से मक्खियाँ निष्क्रिय होकर बैठ जाती हैं, इससे इनके छत्तों पर डंक मारने के भय के बिना ही आक्रमण किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की जल सेना तथा अन्य संस्थाओं ने बड़े-बड़े पराश्रव्य सायरनों की सहायता से कोहरे को अवक्षिप्त किया है ताकि वायुयान भली प्रकार साफ वातावरण में भूमि पर उतर सकें। परन्तु इस सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप मे प्रयुक्त नही किया जा सका है क्योंकि आस-पास उपस्थित लोगो पर उन कम्पनो का अवाछनीय प्रभाव हो सकता है। यद्यपि ध्वनि के स्नायुविकार, पागलपन तथा बहरा कर देने के प्रभाव के विषय मे बहुत कुछ लिखा गया है, फिर भी अश्रव्य तेज ध्वनि के प्रभाव के विषय मे अभी बहुत कुछ जानना शेष है। फिर यह ज्ञात है कि न्यून स्तरों पर ध्वनिऊर्जा बालवाले चूहो को गरम कर देती है क्योंकि बालों के खाली स्थान मे उपस्थित वायु अधिक ताप का शोषण कर सकती है। हमारी सामान्य श्रवणक्षमता से कुछ ही तेज ध्वनि त्वचा को जला सकती है और बाल वाले जन्तुओं की उससे मौत तक हो जाती है। बिना बालो वाली त्वचा पर भी तीव्र अश्रव्य ध्वनियाँ त्वचा पर फफोले डाल देने जैसा प्रभाव रखती हैं। जेट वायुयानों के पीछे पूँछ की तरफ यदि कोई व्यक्ति जाये तो उसके कानो और नाक तथा अंगुलियो के मध्यस्थ स्थानो पर तीव्र जलन होती है क्योकि वायुयान के उस क्षेत्र में तीव्र ध्वनितरंगें रहती हैं। इसके अतिरिक्त उन व्यक्तियो को कई प्रकार के अन्य रोग हो जाते हैं, जिसमे कि आँखो को धुँधला दिखाई देने लगता है, घुटने कमजोर हो जाते हैं तथा पुट्ठो में पीडा होने लगती है। विशेषकर यदि पहले-पहल किसी व्यक्ति को ऐसा अनुभव हो तो अत्यधिक भय भी प्रतीत हो सकता है। बहुत उच्च आवृत्ति की ध्वनियाँ शरीर की कोशिकाओ मे उसी तरह परिवर्तन उत्पन्न करती हैं, जैसे कि तीव्र रेडियो एक्टिव विकिरण। दोनो अवस्थाओ मे हानिकारक प्रभावों का कारण मुख्यतया पानी के अणुओं का दो भागो मे विभक्त होकर स्वतन्त्र मूलक बनाना होता है। ये मूलक विभिन्न प्रकार से आपस मे मिलते हैं और हाइड्रोजन पैरोक्साइड तथा न्यूनाधिक रूप से अन्य विषैले यौगिक बन जाते हैं। शरीर की कोशिकाओं में ये उपस्थित यौगिक स्नायु तथा पुट्ठो की क्रियाओं को रोक देते हैं तथा शरीर की अन्य क्रियाओ मे भी बाधा उत्पन्न करते हैं। चूँकि आहत व्यक्ति उन उच्च आवृत्तिकम्पनों को सुन नही पाता, उसे अपने कष्ट के कारण का अनुमान नही हो पाता।

वैज्ञानिक हथियार, तकनीकी सहायता तथा युद्ध के हथियार के रूप मे वायु मे उत्पन्न तरंगें अभी तक पूर्णतया नियन्त्रित नही की गई। ये कम्पन रासायनिक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न कर सकते हैं, बहुत उच्च तापक्रम उत्पन्न कर सकते हैं, छिद्र कर सकते है, कपडे धो सकते है तथा अन्य बहुत प्रकार के उपयोगी कार्य कर सकते है। ऐसा भी सुझाव दिया गया है कि चूँकि प्रघाती तरंगो की शक्ति तथा दिशा का अनुमान लगाया जा सकता है इसलिए एक ऐसे वायुयान का निर्माण सम्भव होना चाहिए जिसका अनुप्रस्थ परिच्छेद (क्रास सेक्शन) बहुत बड़ा हो ताकि ऐसी विशिष्ट तरंगें पैदा की जा सकें जो तोपों, बमों अथवा राकेट के स्थान पर प्रयुक्त की

जा सकें। ऐसी तोप तैयार करने की दिशा में कुछ काम हुआ भी था जोकि गोलियों के स्थान पर प्रघाती तरंगें छोड़े। यद्यपि ऐसी बन्दूक बनाये जाने की सूचना मिली थी जोकि पर्याप्त दूरी पर खरगोशों को मार सकती थी फिर भी इसको कार्यान्वित करने के लिए बहुत ऊर्जा की आवश्यकता थी और इसीलिये वह व्यावहारिक सिद्ध नहीं हुई परन्तु जो कुछ मन सोचता है, मनुष्य प्रायः उसे पूरा कर ही टालता है। केवल समय ही बतायेगा कि भविष्य में वायु की इन आश्चर्यजनक तरंगों को किन-किन कार्यों मे लगाया जा सकेगा।

दसवां अध्याय

अनिश्चित मौसम

मौसम से हम कई बातें समझते हैं। कुछ स्थानों पर मौसम केवल बर्फ और झंझाओं का चक्र होता है, और दूसरे स्थानों पर मौसम वायु द्वारा उड़ायी गयी बालू अर्थात् आंधी, वर्षा या उमस से बनता है। कई अन्य स्थानों पर मौसम से वही अभिप्राय लिया जाता है जो हम ऋतु से समझते हैं, अर्थात् पर्याप्त एक सी अवस्थाओं के एक काल के बाद अन्य अवस्थाओं वाला दूसरा काल लगातार चक्कर रूप में आता-जाता रहता है। मौसम के बनाने में झंझावात, तड़ित् (बिजली) तथा तीव्रता से चलती हुई वायु मुख्य कारक होते हैं। इनका वर्णन गत अध्यायों में किया जा चुका है। परन्तु प्रतिदिन की दिनचर्या में ये विशिष्ट अवस्थाएं निश्चित रूप से अवान्तर अंग होती हैं। मौसम की महत्त्वपूर्ण परिभाषा यह है कि "मौसम इधर से उधर यात्रा कर रहे और आपस में क्रिया करते हुए वायु के बड़े-बड़े पुंजों का नाम है, जिनमें ताप, शीत, आर्द्रता तथा शुष्कता की शक्तियां भाग लेती हैं। मनुष्य बहुत समय तक केवल सरसरी रूप में ही मौसम के विषय में कुछ समझ पाया था, जब तक कि वह वायु का तापक्रम नापने, दाब की परीक्षा करने, वायु की दिशा का ज्ञान प्राप्त करने तथा अनेक स्थानों पर एक साथ उक्त जानकारी प्राप्त करने के योग्य नहीं हो गया। वह बहुत सीमा तक उन तीन अन्धों के समान था जो एक हाथी का वर्णन क्रमशः उस की पूंछ, टांगों तथा पार्श्वों का स्पर्श करके करना चाहते थे।

यद्यपि सम्पूर्ण संसार के मौसम के विषय में अभी बहुत कुछ सीखना शेष है, फिर भी हम जानते हैं कि आधारतः यह प्रतिदिन के अनुभवों से भिन्न नहीं है। गरम पानी की बौछार से स्नान करने के बाद जो जमा हुआ कोहरा सा हम स्नानगृह के दर्पण पर देखते हैं, वह बादल का ही 'चचेरा भाई' होता है। साइकिल पम्प से हवा भरने के बाद जब पम्प गरम हो जाता है, या जब किसी ग्रीष्म-काल में आर्द्र तथा उमस वाले वायुमण्डल के दिन पसीने से भरे हुए कुर्ते में से हवा लगने से कुछ सुहावना सा प्रतीत होता है, तब हमें फिर छोटे पैमाने पर उसी घटना की याद आती है जिससे कि मौसम बनता है।

एक पहिये के घेरे के समान मौसम की प्रक्रियाओं का न तो कोई प्रारम्भ प्रतीत होता है और न ही अन्त। मौसमी चक्र सदैव घूमता रहता है। ऐसी अवस्था में हम "प्रारम्भ से आरम्भ" नहीं कर सकते। किन्तु हमें कहीं बीच में से प्रारम्भ

करना ही होगा। घटनाओ के इस चक्र में हस्तक्षेप का ठीक समय संभवत मौसम के आद्गनय दृश्य की समाप्ति पर हो सकता है।

पानी के गिलास में जैसे कि चीनी अथवा नमक घुलकर अदृश्य हो जाता है उसी प्रकार पानी भी वाष्पीकृत होकर वायु मे मिल जाता है और अदृश्य हो जाता है। सूर्य के ताप के प्रभाव से नदियों, उष्णकटिबन्ध के समुद्रो, खेतों, जगलों और ध्रुवीय क्षेत्रो में जमी बर्फ से वाष्प उडकर वायुमण्डल मे मिलते रहते हैं। यद्यपि ये जलवाष्प अदृश्य होते हैं तथापि ये मौसम परिवर्तनो के कारक का काम करते हैं।

पानी का एक अणु जब सागर, झील अथवा सडक के किनारे पडे कीचड़ से पृथक् होता है तो वह कुछ मात्रा मे सूर्य की विकीर्ण ऊर्जा भी अपने साथ ले जाता है जो उन विद्युतीय शक्तियों में छिपी थी, जो इसे इकट्ठा रखे हुए थी। प्रकृति में ऊर्जा एक धन है, और जलवाष्प के अणु से वह ऊर्जा छुड़वायी जाती है, और इस प्रकार वह अणु फिर द्रव जल के रूप में लौट आता है। यह आश्चर्यजनक कार्य वायु में उपस्थित कणों—बहुत सम्भवत: सूक्ष्म नमक के क्रिस्टलों—द्वारा सम्पन्न होता है। यह नमक संभवत: किसी नमक वाले समुद्र से आया था। वायुमण्डल के शीतल भागो में इन न्यूक्लियसो के चारों ओर जलवाष्प के अणु इकट्ठे हो जाते हैं, और बादल के बिन्दुक बना देते हैं; ठीक उसी प्रकार जैसे कि स्नानगृह के दर्पण पर धुंध के रूप में बादल सा जम जाया करता है। प्रकृति मे ऊर्जा सम्बन्धी लेखा-जोखा सदा बराबर रहता है; प्राप्य तथा उसमें उपस्थित ऊर्जा ठीक उतनी ही होती है जितनी कि देय तथा उसमें उपस्थित ऊर्जा होती है। लगभग एक अरब टन जलवाष्प प्रति मिनट बनते हैं, और लगभग एक अरब टन ही वर्षा उतने समय मे पृथ्वी पर गिरती रहती है। इतने वाष्पो को बनाने के लिए एक विलक्षण क्षमता वाले महान् पावर हाऊस की जरूरत है, जिसकी क्षमता लगभग तीस लाख अरब अश्व शक्ति की हो। उल्लेखनीय बात यह है कि इस लेखे-जोखे मे वर्षा की एक बून्द भी गिनती से नही बच सकती।

वायु को जब दबाया जाता है तो यह गरम हो जाती है। दाब को जब हटा लिया जाता है तो यह फैलती है और ठण्डी हो जाती है। वायु जब वायुमण्डल मे ऊपर की ओर उठती है, तब उस पर वायुमण्डलीय दाब कम होता जाता है, और इसलिये यह ऊंचाई के बढने के साथ शीतल होती जाती है और जब उसे भूमि पर धकेल दिया जाता है तो यह फिर गरम हो जाती है।

ग्रीष्म-कालीन मध्याह्नोत्तर वर्षा वायु के किसी पुंज पर उक्त प्रभाव से होने वाले परिवर्तन पर निर्भर होती है। भूमि के साथ स्पर्श करती हुई शान्त वायु प्रातः काल से ही सूर्य की किरणों द्वारा गरम होना प्रारम्भ हो जाती है। गरम खेतों तथा स्थलों से जलवाष्प भी उठते हैं। मध्याह्न तक वह सम्पूर्ण क्षेत्र गरम और आर्द्र वायु से भर जाता है जो तेजी के साथ ऊपर के ऊँचे क्षेत्रों की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर देती है। जैसे वायु ऊपर चढ़ती है उस पर दाब कम हो जाता है एवं वह फूल और शीतल हो

जाती है। कुछ समय पश्चात् ऊपर उठती हुई वायवीय धाराएं ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाती हैं जबकि उनमे उपस्थित जलवाष्प दिखाई देने वाले बादलों के रूप में जमना शुरू हो जाते हैं। जब एक बार यह प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है, तो पानी से वाष्प बनते समय प्राप्त ताप ऊर्जा उस बादल के अन्दर ही स्वत: मुक्त हो जाती है, और यह निरन्तर ऊपर उठती हुई धाराओं को और बढाती है। यहां से लौटना अब असम्भव है। यह अस्थायित्व एक गरज वाले तूफान को जन्म देता है।

कभी-कभी गर्जन-मेघ से ओले गिरते है। इसका कारण यह है कि ऊपर जाती हुई वायु इतनी तेज हो जाती है कि बादल के कुछ भागों मे उपस्थित वर्षा की बूंदें नीचे नही गिर सकती। इसके विपरीत वे ऊपर ही ऊपर चढ़ती जाती हैं और ऊपर के वायु के शीत तापक्रमो पर पहुँचने के बाद जम जाती है, लगभग उसी तरह जैसे कि किसी रेफ्रिजरेटर मे बर्फ के टुकड़े जम जाते हैं। जमी हुई बूंदो के, बिना जमी बूंदो से टकराने के कारण बर्फीले पत्थर (ओले) निरन्तर बडे होते जाते हैं, जब तक कि गुरुत्वाकर्षण के बल के कारण उनका नीचे गिरना संभव न हो जाये। और ऊपर चढती हुई वायवीय धाराए इतने भारी ओलों को ऊपर नही ले जा सकती। ओलो के आकार से इस बात का पता चलता है कि ऊपर जाने वाली वायवीय धाराए कितनी तीव्र थी। गोल्फ खेलने के गेंद जितने ओले प्राय: देखने में आते है, और कभी-कभी तो बेसबाल जितने बड़े एव शुतुरमुर्ग के अण्डे जितने बड़े भी। फसलें प्राय: नष्ट हो जाती हैं और कभी-कभी तो ये बडे-बडे ओले पशुओं को भी मार देते हैं। मनुष्यों को ओलों द्वारा चोट लगने की घटनाएं प्रतिवर्ष सुनने में आती है, और कभी-कभी तो इनकी चोट से मनुष्य मर भी जाते है। एक ओलाबारी में तो उन्नीस आदमियो तक की हत्या हो चुकी है। उस घटना से ही "बुक आफ जोशुवा" मे वर्णित कैनानाइट की सेना की कहानी पर सहसा विश्वास हो जाता है। उस कहानी के अनुसार उस सेना पर ओलाबारी द्वारा अधिक सिपाही मारे गये थे, अपेक्षाकृत उनके जिन्हे कि इजराइलियो ने तलवार द्वारा मौत के घाट उतारा था।

वायु के जीवन का एक अन्य अध्याय उस कोहरे से सम्बन्धित है जो कि किसी शीतल स्वच्छ रात को किन्ही निचले स्थानो पर प्रकट होता है और सूर्योदय के साथ ही शीघ्र ही अदृश्य हो जाता है। जैसे-जैसे रात नजदीक आती जाती है और वायु उसमे हलचल पैदा करना बन्द कर देती है, सब से भारी और सबसे शीतल वायु का भाग नीचे की ओर बैठ जाता है। वह खाली स्थानो में जोहडों के ऊपर तथा नदियो के साथ-साथ घना होकर जमा हो जाता है। वायु वही की वही रुक जाती है, वायु बन्द हो जाती है, और अधिक नीचे नही जा सकती। इसमे उपस्थित ताप धीरे-धीरे विकीर्ण हो जाता है। वायु शीतल हो जाती है और इसके कुछ जलवाष्प छोटी-छोटी बूंदो के रूपो में जम जाते है, जिसे कोहरा कहा जाता है। दूसरे जलवाष्प ओस के रूप मे घास और पेड़-पौधो पर उसी प्रकार से जम जाते हैं जिस प्रकार खिड़की के शीशे पर फूंक मारने से बादल सा जम जाता है। यदि तापक्रम पर्याप्त रूप से कम हो

तो यह आर्द्रता नन्हें बर्फ के क्रिस्टल के रूप में जम जाती है, और चमकीला पाला सम्पूर्ण भू-पृष्ठ पर फैल जाता है। सूर्योदय होते ही यह फिर ताप ग्रहण करता है एव जल फिर वाष्प का रूप धारण कर लेता है।

मौसम अधिकतर वायु के विशाल पुंजो के आपसी सघर्ष का परिणाम है न कि अकेले पैकटों का। मौसम को समझने का यह दृष्टिकोण पहले-पहल स्कैन्डेनेविया से प्रचलित हुआ। स्कैन्डेनेविया मे नोर्स की पौराणिक कहानियो मे तडित् और ग्रीष्म-कालीन ताप के देवता "थोर" तथा शीत और पाले के देवता 'राइम' की कभी समाप्त न होने वाली लडाई का वर्णन है। नार्वे के प्रोफेसर विल्हेम जरकेन्स ने प्रथम महायुद्ध के समय के आस-पास इस बात का पता लगाया कि उत्तरी गोलार्द्ध मे होने वाले मौसमों पर शीतल और शुष्क वायु के उन महान् पुंजो का विशिष्ट प्रभाव होता है, जो ध्रुवीय क्षेत्रो से आरम्भ होकर अनियमित रूप से प्रवाहित होते हैं। इस खोज ने हमे ससार-भर मे होने वाले मौसमी परिवर्तनो को समझने के भी योग्य बनाया।

भूमण्डल के पृष्ठ के कई बड़े भागो पर वायु अपेक्षाकृत स्थिर समूहो मे एकत्रित हो जाती है, जिसका तापक्रम तथा आर्द्रता कुछ दिनों मे एक सा हो जाता है। ध्रुवों की वायु अपेक्षाकृत ठण्डी होती है जबकि विषुवतीय या उष्णकटिबन्धीय वायु आर्द्र होती है। उदाहरणार्थ सूर्य की ऊष्मा से रहित शीत-काल में उत्तरी साइबेरिया की बजर भूमि में सैकड़ो मील व्यास का वायु का एक टुकड़ा कई सप्ताह तक शान्त अथवा विश्राम की अवस्था मे पड़ा रह सकता है। प्रचण्ड ठण्ड का उस वायु पर प्रभाव होता है। और वायु का तापक्रम शून्य से नीचे १०० डिग्री तक पहुच जाता है। ठण्डे होते हुए वह वायु सिकुड़ती है और इस क्रिया मे आस-पास के क्षेत्रो की वायु को वह अपनी ओर खीच कर अपने में मिला लेती है। इस प्रकार वायु का यह टुकड़ा आरम्भ मे कम वायुमण्डलीय दाव का क्षेत्र होता है, परन्तु जैसे-जैसे वायु इसमे आती जाती है यह भारी होना जाता है और भूमि के ऊपर पहले की अपेक्षा अधिक दाव डालने लगता है। अन्त में यह इतना महाकाय और भारी हो जाता है कि वह हमारी इस तेज घूमती पृथ्वी पर सन्तुलित नही रह सकता, और उससे पृथक् हो जाता है। ऊपरी वायवीय धाराओं या संभवतः इस पर प्रभाव होता है और यह अपनी वास्तविक जन्म-भूमि से दूर चला जाता है। दक्षिणी गोलार्द्ध के बहुत से भागों पर होने वाली मौसमी घटनाओं पर प्रभाव डालने वाली सबसे बड़ी फैक्टरी दूर-दूर तक जमा हुआ दक्षिणी ध्रुव महाद्वीप है जहां तापक्रम मे १०० डिग्री का अन्तर प्रायः एक सामान्य बात है।

केवल ठण्डी वायु के पुंज ही ऐसे नहीं, जो पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं। गरम तथा आर्द्र वायु भी कहीं-कहीं इकट्ठी हो जाती है, मुख्यतः उप-उष्ण कटिबन्धीय समुद्रों पर। यहां पर और ताप पाकर वायु फैल जाती है। परिणामस्वरूप यह अपेक्षा-कृत उच्च-दाब का क्षेत्र बन जाता है। ध्रुवीय क्षेत्रों के विपरीत जहां सूर्य का अभाव अधिक प्राथमिक स्थिरता प्रदान करता है, उष्ण क्षेत्रों मे परिस्थितियों की समानता जल के विशाल क्षेत्रो अर्थात् सागरों द्वारा उत्पन्न होती है। दिन के समय ताप को

चूसने और रात्रि के समय उसको छोड़ने से समुद्रजल तापक्रम को शनै.शनै परिवर्तित करता है। यह स्थिरता ऊपरी वायु को शान्त करती है।

प्रकृति, जो कि एक बुद्धिमान ओवरसियर है, ताप, शीत, दाब, आर्द्रता तथा शुष्कता इनमें से किसी का भी अधिक होना देर तक सहन नही कर सकती। इसलिए अनिवार्य रूप से शीतल वायु के विस्थापित टुकड़े जो हमारी घूमती हुई पृथ्वी के घूर्णन के बल से गतिमान है, आर्द्र वायु से टकराते है। यह विशिष्ट टक्कर मुख्य रूप से पृथ्वी के शीतोष्ण क्षेत्रो मे होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका मे पूर्व से पश्चिम की दिशा में पर्वत नही है, जो वायु धाराओ के लिए प्राकृतिक दीवार का काम कर सके। अत. निरन्तर रूप से यह महाद्वीप टकराने वाले वायु के टुकड़ों से बने मौसम के प्रभाव मे रहता है। सैनिक शब्दावली के अनुसार हवाओ के दो टुकड़ों मे टक्कर लगने के क्षेत्र को मोर्चा या 'फ्रन्ट' कहा जाता है। यदि उष्ण वायु विजयी होती है, तो मौसम-विज्ञ उसे गरम मोर्चा "हाट फ्रन्ट" कहते है, और यदि इसके विपरीत ठण्डी वायु के टुकड़ों का पासा भारी होता है, तो मौसम-विज्ञ उसे शीत मोर्चा "कोल्ड फ्रन्ट" कहते है।

मानो युद्ध के नियमो का अनुसरण करता हुआ वायु का प्रत्येक टुकड़ा अनुभूत और सही दाव-पेंचो तथा युद्धकला का प्रयोग करता है। किसी क्षेत्र को जीतने या वहां से पीछे हटने के तरीके काफी भिन्न होते हैं, परन्तु इन दोनो हालतों मे उनका आचरण अपने स्वभाव के अनुसार ही होता है। एक टुकड़ा ठण्डा और अपेक्षाकृत जलवाष्प रहित होता है, वह धीरे-धीरे गति करता है जैसे कि गाढा शर्बत। दूसरा टुकड़ा जो कि गरम वायु के बड़े भाग के फैलने से उत्पन्न होता है, हल्का होना है और सरलतापूर्वक बह सकता है। इसके अतिरिक्त उसके जलवाष्पों मे ऊर्जा का भंडार रहता है। आश्चर्यजनक ढग से उत्तर से आने वाली वायुधाराए और दक्षिण से आने वाली वायुधाराए एक-दूसरे मे नही मिलती। प्रत्येक अपना-अपना व्यक्तित्व धारण किये रहती है। युद्ध का क्षेत्र अथवा मोर्चा कभी-कभी लगभग लम्बरूप और टकराने वाले वायु के टुकड़ो द्वारा घेरे गये क्षेत्रों के मुकाबले मे तंग होता है, इतना तंग कि उसे किसी नक्शे पर केवल एक लाइन द्वारा ही दर्शाया जा सकता है। कभी-कभी यह आक्रमण के लिए तैयार शेर की तरह खड़ा होता है—पिछली टांगें तो पृथ्वी पर और ऊपरी भाग आगे की तरफ बढा हुआ।

शीतल वायु भारी होने के कारण भूमि के साथ रहती है और फन्दी का पेंच खेलती है। वह अपने प्रतिद्वन्द्वी को बैल की तरह अपने सीगो पर उठा लेना चाहती है। किन्तु उत्तरी वायु आगे बढ रही होती है, तो भूमि घर्षण उसके आक्रमण को कुण्ठित कर देता है तथा उसके ठीक पीछे की वायु समुद्र में बर्फ तोड़ने वाले जलयान की तरह आगे बढ जाती है। परिणाम एक बहुत तंग मोर्चा होता है। कुछ वर्षा होती है या बर्फ का तूफान आता है और फिर शीघ्र ही आकाश साफ हो जाता है, वायु की [illegible] बदल जाती है, और शीत बढ़ जाती है। इस ठण्डे मोर्चे के आरम्भ होने से

पहले कुछ आभास नहीं होता। इसके सब से आगे ऊंचे घने बादल होते है और यदि प्रतिद्वन्द्वी गर्म वायु पर्याप्त रूप से आर्द्रता युक्त हो तो शीत ऋतु में भी गरज तथा तड़ित् उत्पन्न होते हैं। जब वर्षा होती है तो बूंदे मोटी होती है जैसे कि ग्रीष्म-काल मे गरज वाले तूफानों के समय होता है। तेज चलने वाली हवाएँ धोखेबाज होती है। इनके परिणामस्वरूप वायुयान चालकों और छोटी नौका के चालकों के लिए खतरा बना रहता है।

गर्म वायु का टुकड़ा अपनी विजय एक भिन्न विधि से प्राप्त करता है। इसका आक्रमण कुछ कम प्रभावशाली होता है, और इतना उग्र अथवा प्रचड भी नही। परन्तु यह पर्याप्त रूप मे विध्वंसक हो सकता है। गर्म वायु जब शीत वायु की तिरछी फन्नी से मुठभेड़ करती है तो उसके लिए यही मार्ग है कि वह ठण्डी वायु के ऊपर से आगे गुजर जाय। और इस प्रकार युद्धभूमि का 'नियन्त्रण' कुछ समय के लिए शीत वायु के हाथ में आ जाता है। ऊपर उठी वायु से मन्द-मन्द, लगातार वर्षा या हिमपात होता है। शीत वायु में से गुजरते हुए वर्षा कभी-कभी जम जाती है और खिडकियों पर आवाज के साथ गिरती है। स्मरण रहे कि वर्षा की बूंदे जमकर हिम का रूप धारण नहीं कर सकतीं। बर्फ के छोटे-छोटे टुकड़े पिघल कर बूंदें बनाते हैं, परन्तु बर्फ के छोटे-छोटे पत्तरे तभी बन सकते है जबकि जलवाप्प बिना द्रव अवस्था में आये सीधे बर्फ के रूप में जम जायें। सर्दियो में परिस्थितियां सामान्यतया वर्षा, हिम या सहिम वर्षा के बनने में सहायक होती है, किन्तु यदि निचली वायु की तह सही तापक्रम तक ठण्डी हो तो ठण्डी वर्षा भूमितल के पास पेड़-पौधों और बिजली के तार आदि पर जम जाती है। सौभाग्य से यह अवस्था देर तक नही रहती, क्योंकि वर्षा के इस प्रकार जमे रहने के लिए विशिष्ट तापक्रम की आवश्यकता होती है। चूंकि उष्ण वायु अपने साथ ताप-ऊर्जा का भंडार लाती है, इसलिए शीतवायु धीरे-धीरे पीछे हट जाती है। तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ जाता है, और सामान्यत: इसमें पर्याप्त समय लगता है।

"गर्म मोर्चा" अपनी पहुँच की सूचना पर्याप्त समय पूर्व ही दे देता है। भूमि-पृष्ठ के मोर्चे से लगभग एक हजार मील आगे हिम क्रिस्टलों के गुच्छों वाले हिममय बादल, जो कि 'घोड़ी की दुम' कहलाते है, ठण्डी वायु की तह के ऊपर उपस्थित जलवाप्पो की अल्प मात्राओ से बन जाते है। जैसे-जैसे गर्म हवा आगे चलती जाती है उसे ढापने वाला बादलों का आवरण क्रमश: गाढ़ा होता जाता है और ढके हुए सूर्य या चन्द्रमा के चारो ओर प्रभामण्डल दिखाई देने लगते है। जैसे-जैसे ऊपर जाने वाली वायु अन्दर प्रवेश करती है, नीचे भारी बादल बन जाते हैं और हल्की-सी वर्षा होने लगती है, जो धीरे-धीरे बढ़ती हुई भारी वर्षा में बदल जाती है। अन्त में जब "गर्म मोर्चा" अपनी पूरी गहराई मे पहुँचता है, अवक्षेपण बन्द हो जाता है। वायुमण्डलीय दाब बढ़ता है, बादल लुप्त हो जाते हैं और चरम सीमा को पहुँचे हुए शीतकाल में भी कुछ एक दिन के लिए वसन्त ऋतु के समान मौसम आ जाता है। दोनों प्रकार की हवाओं के अग्र भागों के परस्पर सम्पर्क में आने से अतिवृष्टि होती है अथवा हिमपात।

और इसके उपरान्त वायुमण्डलीय-दाव मे कमी हो जाती है। समीपस्थ अन्य वायु इस आंशिक निर्वात को भरने के लिए उधर की ओर गति करने लगती है। यह कार्य हल्की तथा सरलतापूर्वक बहने वाली गर्म वायु अधिक अच्छी तरह कर सकती है अपेक्षाकृत भारी गाढी ठण्डी हवा की तह के। यह अन्दर की ओर बहती है, धीमी ढलान से युक्त पूर्व-वर्णित पृष्ठ के साथ-साथ नही, अपितु सर्पिलाकार पृष्ठ पर। सर्पिलाकार पृष्ठ का कारण दो एक साथ बढने वाले वायवीय मोर्चों की बट खाने वाली गति है। इस मुठभेड के परिणामस्वरूप वायुमण्डल मे एक विशाल घर्षण पैदा हो जाता है, जो कि गर्म तथा आर्द्र वायु को हड़प कर जाता है, और तेज वायु तथा तेज वर्षा को उगल देता है। यह सम्पूर्ण क्रिया पूर्व दिशा की ओर तब तक गतिशील रहती है, जब तक कि वायु के साथ आने वाले जलवाष्पों के साथ ऊर्जा की विशाल मात्राएँ प्राप्त होती रहती है।

विशाल होने के कारण प्रशान्त महासागर ससार के मौसम के अधिकांश भाग को प्रभावित करता है। मध्य प्रशान्त महासागर पर से आने वाली ग्रीष्मकालीन हवाएँ एशिया मे भारत से लेकर कोरिया तक चलती है, और इस महाद्वीप के तटीय क्षेत्रों मे बहुतायत मे वर्षा लाती है। आन्तरिक क्षेत्र मे स्थित गोबी रेगिस्तान तक केवल वे ही हवाएँ पहुँच पाती हैं जिनकी आर्द्रता निचुड गयी होती है। दक्षिण-पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका भी इन्ही सूखी हवाओं के मार्ग मे स्थित है। ये क्षेत्र सम्पूर्ण पृथ्वी पर सबसे शुष्क और गरम है। शीत ऋतु मे सायबेरिया से आने वाली ध्रुवीय वायु एशिया को पार करती हुई, मध्य प्रशान्त महासागर की वायु को हिन्द महासागर और आस्ट्रेलिया की ओर घुमा देती है। ऊपर उठी हुई और ठण्डी यह प्रशान्त महासागर की वायु ईस्ट इण्डीज को पार करते समय अपनी बहुत-सी आर्द्रता से वचित हो जाती है और यह पश्चिमी आस्ट्रेलिया पर पहुँचने से पहले ही शुष्क और गरम हो जाती है। पश्चिमी आस्ट्रेलिया भी रेगिस्तान है।

वायु के पुंजों की गतियों और "मोर्चों" पर वास्तव में बहुत सरल रूप से विचार किया गया है। वास्तविक अवस्थाएँ शायद ही कभी ऊपर के विशिष्ट रूपों मे मिलती हैं। किसी भी प्रकार के वायवीय "मोर्चे" किसी भी स्थान पर इतने मन्द हो सकते है कि ये कठिनाई से ही अनुभव किये जा सकें। कभी-कभी वे कुछ समय के लिए लुप्त होते हुए प्रतीत होते है तत्पश्चात् पुनः सक्रिय विक्षोभो मे प्रकट होते है। दो शीत "मोर्चे" गरम वायु के किसी पुंज को घेर कर ऊपर उठा देते है, जिससे कि पहाड़ों की चोटियो पर बादल आकर वर्षा होती है, और उन चोटियो के मध्यवर्ती निचले क्षेत्र मे बादल का कोई चिह्न तक नही होता। इस प्रकार की घटनाएँ मौसम के विश्लेषण और पूर्वानुमान को जटिल बना देती हैं।

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप तथा ससार के कुछ एक अन्य भाग मौसम के अध्ययन केन्द्रों से सुसज्जित हैं तथापि पृथ्वी का मौसम अभी भी उतना अज्ञात है जितना कि उस समय था जबकि कोलम्बस का जहाज़ पश्चिम की ओर अग्रसर हुआ

था। मौसम के मानचित्रों पर विशाल महासागरों के क्षेत्र अब भी खाली पड़े हैं। यह कारण है कि मौसम पूर्वानुमान करने वालों के सामने कठिनाइया आती है।

कुछ दिन पहले ही मौसम का पूर्वानुमान करने में कठिनाई को समझना कठिन है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि वायुमण्डल एक विशाल और अत्यधिक जटिल क्षेत्र है। विशाल वायवीय क्रिया विधियों की व्यापक योजना के सम्बन्ध में निश्चित रूप से पर्याप्त जानकारी हमें अभी तक नही है। मौसम की क्रिया-विधियों को समझने के लिए दो विभिन्न विचारधाराएँ हमारे सम्मुख हैं। वैज्ञानिको का एक समूह इस सिद्धान्त के पक्ष में है कि वायुमण्डल गति सम्बन्धी द्रवगति विज्ञान के समीकरणों का पालन करता है और इसलिए किसी विशेष समय की मौसमी अवस्था से कुछ समय बाद होने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान हो सकता है। दूसरी विचारधारा, जो कि इस समय अपेक्षाकृत कम प्रचलित है, के अनुसार मौसम सदैव अस्थिरता धारण किये है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि नोक पर समतुलित एक पैंसिल। दूसरी विचारधारा के अनुसार मौसम वास्तविक रूप में अनिश्चित है और उसका पूर्वानुमान करने का सबसे अच्छा तरीका पहले हुई मौसमी घटनाओं का अध्ययन है।

आजकल के पूर्वानुमानकर्त्ता प्रायः दोनों विचारधाराओं के मिश्रण को उपयोग में ला रहे हैं। उनका प्राथमिक हथियार वह नक्शा है जिस पर कि समार भर के वायु दाबों का विभाजन दर्शाया गया है। बैरोमीटर की सहायता से बनाया गया यह नक्शा वायुमण्डल की भौतिक स्थिति को दर्शाता है। इससे वायु के बड़े पुंजों की आगामी दिनों में होने वाली गतिविधि के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। साथ ही हवाओं की दिशा अथवा तापक्रम का पर्याप्त सत्यता के साथ पूर्वानुमान गड़बड़ पैदा करने वाले सभी प्रभावों को ध्यान मे रखते हुए किया जा सकता है। यह नक्शा इस बात के पूर्वानुमान में किसी उपयोग का नही है कि कल वर्षा होगी या नही, हिमपात होगा या नहीं? यद्यपि नक्शा सामान्य रूप से किसी स्थान के आस-पास गर्जन-मेघों की सक्रियता का सुझाव देता है, तथापि गरज के साथ वर्षा का निश्चित स्थान दर्शाने के लिए वह उपयोगी नहीं है, क्योंकि गर्जन के साथ वर्षा उसी प्रकार कहीं भी हो सकती है, जैसे कि खौलते हुए जल के पात्र में बुलबुले। इस प्रकार मौसम का पूर्वानुमान अभी प्रारम्भिक अवस्था में है, तथा पुराने अनुभवों के आधार पर उसका अन्दाजामात्र लगाया जा सकता है।

इसमें आश्चर्य नही कि मौसम के पेशेवर भविष्य वक्ताओं की भविष्यवाणियां औसत रूप में काफी सही कही जा सकती हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका के मौसम विभाग का दावा है उनके अनुमान ८५ प्रतिशत सत्य निकलते हैं, यद्यपि इसमें अधिकाश समय ऐसा होता है, जबकि मौसम में वैसे ही खास परिवर्तन नहीं होता, और जिसका पूर्वानुमान सरलतापूर्वक किया जा सकता है। परन्तु आशा की जाती है कि मौसम विज्ञान सम्बन्धी प्रयत्नों के शीघ्र ही उत्तम परिणाम निकलने लगेंगे, क्योंकि विज्ञान के क्षेत्रों की प्रगति के साथ-साथ इसमें भी प्रगति होगी। तार-संचार ने भी

का समारम्भ किया था। मेघों, वायु पुंजों तथा तूफ़ानों के बारे में हमारा अधिकांश आधुनिक ज्ञान वायुयानों द्वारा वायुमण्डल की खोज से संभव हो सका है, यद्यपि वायुयान के आविष्कार का मौसमों के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। इसी प्रकार रेडार, जिसके द्वारा तूफ़ानों और बादलों की गतिविधियों को बहुत दूर से ही जाना जा सकता है, आजकल के मौसम विशेषज्ञों के लिए एक महान् वरदान है। हाल में एक बहुत उपयोगी रेडार का आविष्कार हुआ है, जिसके साथ एक 'मस्तिष्क' है जिससे कि बादलों के विकास तथा मोर्चों की गतिविधियों का चित्र तैयार करने में बड़ी सुविधा हो गयी है। किसी भी समय रेडारस्कोप का चित्र इलैक्ट्रोनिकी से 'मस्तिष्क नलिका' में अंकित हो जाता है, उसके दस से तीस मिनट बाद वह चित्र पुनः प्राप्त किया जा सकता है और उस समय दृष्टिगोचर होने वाले बादलों पर अध्यारोपित (सुपरइम्पोज्ड) क्रिया जा सकता है। स्मृति चित्र लाल तथा तत्कालीन चित्र हरा दिखायी देता है। परस्परव्यापी (ओवरलैपिंग) क्षेत्र जो कि परिवर्तन को सूचित करते हैं, प्राथमिक रंगों के मिल जाने के कारण भी पीले रंग में दिखाई देते हैं। इनके साथ-साथ कुछ एक इलैक्ट्रानिकी मशीनें हैं, जिनके 'मस्तिष्क' में वे घटनाएं चित्रित हैं जो कि किसी गत समय में किसी विशेष मौसम के बाद घटी थी। उन मशीनों से कुछ ही मिनटों में पर्याप्त सत्यता के साथ कुछ दिन पश्चात् होने वाले मौसम का पूर्वानुमान किया जा सकता है। इसके साथ-साथ ऐसे इलैक्ट्रानिकी परिकलन यन्त्र (कम्प्यूटर मशीन) काम में लाये जा रहे है, जो कि लाखों गणनाएं तुरन्त कर डालते हैं जिनमें गणित सम्बन्धी गणनाएं सम्मिलित हैं। इन यन्त्रों में, उत्तरीय गोलार्द्ध में दूर-दूर तक फैले हुए मौसम अध्ययन केन्द्रों से प्राप्त वायु के गतिवेग, वायु की दिशाएं तथा तापक्रम इत्यादि का समावेश किया जाने लगेगा। उन परिकलन यन्त्रों से भविष्य में निश्चित समय पर आने वाली हवाओं और तापक्रमों के बारे में पहले से जानकारी मिलेगी। इस समय भी कुछ मौसम केन्द्रों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर इन यन्त्रों के जरिये पूर्वानुमान लगाये जा रहे हैं, जो लगभग उतने ही सत्य होते हैं, जितने कि परम्परागत विधियों द्वारा प्राप्त किए गए अनुमान। भविष्य में की जाने वाली इलैक्ट्रानिकी गणनाए मौसम के पूर्वानुमान में होने वाली मानवीय त्रुटियों को दूर कर देंगी। कुछ ही वर्षों में इन यन्त्रों में वायु के दाब, वायवीय दिशाएं, अवक्षेपण क्षेत्र, तापक्रम वायु पुंज सीमाएं, न्यूक्लियस सम्बन्धी आकड़े, सौर गतिविधियाँ तथा किसी क्षेत्र की मौसम सम्बन्धी विशेषताएं समाविष्ट की जाएंगी, जिससे भविष्य के मौसम के बारे में काफी सही भविष्यवाणियाँ सम्भव हो सकेंगी।

इस दिशा में और भी अधिक महत्त्वपूर्ण संभवतः पृथ्वी के चारों ओर घूमने वाले उपग्रहों का विकास होगा। पृथ्वी से १०० से ३०० मील ऊपर सम्पूर्ण पृथ्वी के चारों ओर नब्बे मिनटों में चक्कर पूर्ण कर लेने वाले ये यान इलैक्ट्रानिकी आखों की सहायता से विश्वभर के मौसम पर निगरानी रख सकेंगे। वे मौसम के मोर्चों का ठीक स्थान सूचित कर सकते हैं और यह भी बता सकते हैं कि वर्षा कहां हो रही है और

हिमपात कहाँ ? हिमपात कहाँ बन्द हो रहा है और इसका क्षेत्र-विस्तार किधर को है। वास्तव में वे ससार-भर में फैले हुए जल और स्थल पर बने मौसम केन्द्रों से कहीं अधिक उपयोगी है ।

भविष्य में मौसम का बहुत पहले ही पूर्वानुमान कर लेने के लिए उन सब घटनाओं को भली प्रकार जानना होगा जिन्हें अब केवल सरसरी तौर पर देख लिया जाता है। सूर्य के पृष्ठ पर आने वाले प्रचण्ड तूफानों का संसार-भर के मौसम पर विशेष प्रकार का प्रभाव होता है और सूर्य के इन तूफानों के चक्र निश्चय रूप से ही ससार के ऋतु परिवर्तनों पर प्रभाव डालते हैं। ये तूफान आंशिक रूप से जलप्रलय तथा अनावृष्टि या सूखे के लिए भी उत्तरदायी हैं। यह संभव है कि उल्कापातीय धूल के मार्ग भी जिनमें से कि हमारी पृथ्वी लगातार गुज़रती रहती है, अवक्षेपण को प्रभावित करते हों ।

ग्यारहवां अध्याय

योजनानुसार मौसम

यदि कोई शक्ति ऐसी है जिस पर अधिकार स्थापित करने की मानव ने अभिलाषा की है तो वह निश्चय ही मौसम को नियन्त्रित कर सकने की है। हाल ही मे यह कहा गया था—यद्यपि कुछ मजाक मे—कि मौसम का नियन्त्रण करना आसान होगा अपेक्षाकृत उसके पूर्वानुमान के। यद्यपि इन दोनों ध्येयों की सन्तोषजनक रूप में पूर्ण होने की आशा नही है तथापि स्थानीय मौसम सम्बन्धी परिवर्तन किये जा सके हैं, और मौसम की कुछ बातों पर नियन्त्रण अनिवार्य प्रतीत होने लगा है।

ज्ञात इतिहास के आरम्भ से मानव ने मौसम को इच्छानुसार बनाने के लिए बुद्धि का प्रयोग किया है। इस बात मे विश्वास रखते हुए कि देवताओं की सनक और मन की मौज पर सृष्टि निर्भर है, प्राचीन लोगों ने बलिदान एवं प्रार्थनाओं से इच्छित परिवर्तनों की अभिलाषा की। जैसे वैज्ञानिक ज्ञान विकसित हुआ अधिक प्रत्यक्ष योजनाए गढ़ी गई। परन्तु आरम्भ की योजनाएं लगभग उतनी ही अजीब और ऊट-पटांग थी, जितनी कि वे योजनाए जो अन्ध विश्वासो पर आश्रित थीं।

एक समय इस योजना का गम्भीरतापूर्वक सुझाव दिया गया था कि शीतकाल मे ठण्ड को कम करने के लिए हमारी उत्तरीय सीमा के साथ-साथ रेड रिवर से कान्टिनेन्टल डिवाइड तक चूल्हो (स्टोव्स) की एक लाइन लगाई जाय। १८८७ ई० में संयुक्तराज्य अमेरिका द्वारा एक पेटेन्ट दिया गया जिसमे टौर्नेडो तूफानो को नष्ट करने के लिए विस्फोट प्रणाली का विधान था। संभवत: यह सुझाव एक प्रचलित काल्पनिक कहानी से लिया गया था, जिसमे इस चीज का वर्णन था कि पानी का फव्वारा तोप के गोले की सहायता से छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। पेटेन्ट की गयी इस विधि के अनुसार जिस शहर को सुरक्षित रखना हो उसके दक्षिण-पश्चिम दिशा में एक मील दूर एक खम्भे पर विस्फोटक पदार्थ से लैस एक बक्सा लगा दिया जाता था। ऐसा ख्याल था कि किसी उपयुक्त यन्त्र द्वारा विस्फोट करने पर वहा पर टौर्नेडो जैसी वेगमय हवाए उत्पन्न होती है जो कि टौर्नेडो को नष्ट कर देती हैं। संभवत: यह ऐसा ही विचार था जैसे कि चूहो द्वारा पिंजरे को ले भागना। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से पहले कृत्रिम वर्षा बरसाने की कई विधियों का सुझाव दिया गया। संयुक्तराज्य अमेरिका मे कम से कम दो पेटेन्ट दिये गये, कांग्रेस ने दो बार विनियोग राशियां स्वीकार की तथा दो पुस्तकें और अनेकों पुस्तिकाएँ प्रकाशित की

गयी। यद्यपि मानव के ये प्रयत्न वास्तविक रूप में वायुमण्डलीय यन्त्र पर नियन्त्रण नहीं कर पाये, फिर भी ये प्रारम्भिक परीक्षण अवश्य थे। साथ ही मौसम निर्माण में भाग लेने वाली शक्तियों के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा रहा था।

वास्तव में मौसम नियन्त्रण में कृत्रिम वर्षा का कराना अन्य नियन्त्रणों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस समस्या ने अन्य मौसम नियन्त्रणों की अपेक्षा अधिक ध्यान आकर्षित किया है। इस पर अधिक परीक्षण किये गये हैं और किसी अन्य मौसम नियन्त्रण सम्बन्धी प्रयत्नों की अपेक्षा इसका इतिहास भी पुराना है।

मौसम विज्ञान, जो कि न्यून-अधिक रूप में सुस्त था, १९४० के दशक में जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी की शैनक्टडी प्रयोगशालाओं में आरम्भ किये गए परीक्षणों से उसमें नया जीवन आया। द्वितीय महायुद्ध के दिनों में वायुयान के पंखों पर जमने वाली घातक बर्फ की समस्या पर परीक्षण करते हुए, नोबल पुरस्कार विजेता इरविंग लैंगम्यूर तथा उनके साथी विनसैन्ट शैफ़र ने शीत बादलों में जल के उन बिन्दुकों का अध्ययन किया जो बर्फ के कारण थे। उन्हें सन्देह हुआ कि ये बिना जमे हुए बादलों के बिन्दुक मौसम विज्ञान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान कर सकते हैं। उनमें से एक यह भी है कि वर्षा होती क्यों है? जैसे ही युद्ध का अन्त हुआ और उसके साथ ये महत्त्वपूर्ण सैनिक समस्याएं भी समाप्त हुईं, वर्षा उत्पन्न करने वाले बादलों पर अधिक गम्भीरता से अन्वेषण कार्य प्रारम्भ हुआ।

बादलों का विचित्र तथा महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि कभी-कभी वे अतिशीतित अवस्था में रहते हैं, अर्थात् उनके अन्दर विद्यमान जल बिन्दुक जम नहीं पाते हैं यद्यपि उनका तापक्रम पानी के सामान्य जमाव बिन्दु ३२ अंश फारेनहाइट से भी कहीं नीचे होता है। यह अतिशीतित अवस्था प्रयोगशाला में उत्पन्न की जा सकती है, किन्तु शीतितजल का प्रयोगशाला में उपर्युक्त आचरण हमारे अनुभव में नहीं आ सका है। इसका कारण यह है कि प्रयोगशाला के पात्र की कुछ अशुद्धियों से युक्त दीवारें ऐसे केन्द्र उत्पन्न करती हैं जहाँ पानी के बिन्दुक जम जाते हैं। खुले वायुमण्डल में जलबिन्दुक, जिनके लिए नाभिक उत्पन्न करने वाले केन्द्र नहीं होते, बिना पर्याप्त कठिनाई के नहीं जम पाते। किन्तु जब एक बार हिम निर्माण प्रारम्भ हो जाता है तो इससे बादल में शीघ्र ही परिवर्तन शुरु हो जाता है क्योंकि हिम के क्रिस्टल अतिशीतित बिन्दुकों के लिए उसी तरह हैं जैसे कि भेड़िये भेड़ों के लिए। हिम क्रिस्टल जलबिन्दुओं में से जलवाष्पों को मानो चुरा लेते हैं और आकार में बड़े और भारी बन जाते हैं। अन्य वैज्ञानिकों की तरह लैंगम्यूर ने भी यह युक्ति दी कि यदि अपेक्षाकृत थोड़े बर्फ के क्रिस्टलों का अतिशीतित बादलों में बनना प्रारम्भ किया जा सके, तो जल बिन्दुकों के सहारे वे क्रिस्टल आकाश में बड़े हो जाने चाहियें और अन्त में उन्हें हिम के गिरना चाहिए या नीचे गिरते हुए पिघलकर वर्षा के रूप में परिवर्तित हो जाना इस प्रकार से ये जादू भरे बर्फ बनाने वाले कण वर्षा बरसाने के कार्य को

करने के लिए आवश्यक समझे गये। एक साधारण घरेलू हिमकारक में, जिसके अन्दर के प्रकोष्ठ को तेज प्रकाश से प्रकाशित किया गया था और उसके अन्दर की क्रिया भली प्रकार दिखाई दे सके इस उद्देश्य से उसकी दीवारों पर काली मखमल लगा दी गयी थी, शैफ़र ने फूंक मारने से श्वास के बने नन्हें बादलों पर परीक्षण किये। विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों से परीक्षण किये गए परन्तु सफलता नहीं मिली। जुलाई १९४६ में एक दिन उस प्रकोष्ठ को शीघ्रता से ठण्डा करने के लिए उसमें शुष्क हिम (जमी हुई कार्बन-डाइ-ऑक्साइड) का एक टुकड़ा रखा गया, जिसका तापक्रम—११० अंश फारेनहाइट था। एकदम हजारों ही चमकीले क्रिस्टल तेज प्रकाश की किरणों में घूमते हुए दृष्टिगोचर हुए। ये क्रिस्टल उसके देखते-देखते ही बर्फ के गोलों में बदल गए और पेंदे पर बैठ गए। इस प्रकार ठण्डे बादलो से वर्षा करने की विधि का पता चल गया।

१३ नवम्बर, १९४६ ईस्वी के दिन एक छोटे वायुयान में शैफर तथा एक पायलेट (विमानचालक) अतिशीतित बादलो का पता लगाने के लिए गए। मैसाचुसेट्स के ऊपर उन्होंने एक रोऐंदार बादल देखा, जो बिना ध्येय के इधर-उधर तैर रहा था। इसके अन्दर शैफर ने शुष्क हिम ६ पौण्ड बिखेर दी। लगभग उसी समय वह बादल छटपटाने लगा और श्वेतरंग के प्रक्षेपों तथा उभारों से कुछ फूल सा गया। पांच मिनट में ही वहाँ पर एक पतला बर्फीला हार सा दिखाई दिया जहाँ पर कि पहले बादल था। उत्तर की ओर चलती हुई यह बर्फ की माला शीघ्र ही लुप्त हो गयी और बादल का कुछ भी चिन्ह वहाँ शेष न रहा।

आगामी शीतकाल में निरन्तर वायुयानो से शुष्क हिम फैलाकर बर्फीली परतें पैदा की गयी और इस प्रकार स्तरबद्ध बादलों में बड़े-बड़े छिद्र बन गए। ये करतब नाटकीय और सफलतापूर्ण थे परन्तु लैंगम्यूर और शैफर की अभिलाषा केवल यही नहीं थी। इस कार्य के लिए वायुयान की आवश्यकता के अतिरिक्त एक कठिनाई यह भी थी कि शुष्क हिम बादलों में से गिरती हुई ही प्रभावमय होती थी। यदि बर्फ के कणों का प्रभाव एकदम नहीं होता था तो वे वाष्पीभूत हो जाते थे और इस प्रकार से व्यर्थ होते थे।

परन्तु इन्ही दिनों एक अन्य वैज्ञानिक बरनार्ड वोनगट ऐसी स्थायी अनुद्धनशील चीज की खोज में थे जो शुष्क हिम का स्थान ले सके। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि ऐसा कण या क्रिस्टल वही होगा जिसका गठन व आकार-प्रकार हिम क्रिस्टल की तरह का हो, सरलतापूर्वक उपलब्ध यौगिकों मे से सबसे अधिक मिलते जुलते सिल्वर-आयोडाइड की परीक्षा की गई। विद्युत् की सहायता से तप्त एक तार से वाष्पीभूत किये गए कणों ने एक रेफ्रीजरेटर के प्रकोष्ठ में उपस्थित बादल को हिम में परिणत कर दिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि आयोडाइड की अति सूक्ष्म मात्रा ने चमत्कार कर दिखाया हो। तब समस्या यह हुई कि एक ऐसा उत्पादक (जेनरेटर) बनाया जाय, जिसमें प्रति सैकिण्ड कई अरब सिल्वर आयोडाइड के नन्हे कण बनाये जा

द्रवरूप मे ही होते हैं, यद्यपि उनका तापक्रम जमने के तापक्रम से बहुत न्यून होता है।

हिमाक से कुछ ही न्यून तापक्रम पर बिन्दुकों को जमाने के लिए किसी ठोस न्यूक्लियस की सहायक के रूप में उपयोगिता उपेक्षणीय है, परन्तु कम तापक्रमों पर यह सम्भावना बढ़ जाती है जबकि ४० अश फारेनहाइट के तापक्रम पर सब बिन्दुक स्वतः एक साथ जम जाते है। इसलिए शुष्क बर्फ की उपयोगिता का कारण इसका कम तापमान है।

किन्तु कुछ प्रकार के धूलिकण स्वत. जमने के इस तापक्रम के ऊपर भी अति-शीतित जल बिन्दुकों मे क्रिस्टलीकरण प्रारम्भ करने के योग्य होते है। सामान्य रूप में तब, उपस्थित न्यूक्लिया के गुणानुसार विशिष्ट तापक्रम पर अतिशीतित बादलो मे हिम-क्रिस्टल बन जाते हैं।

इसलिए आशा की जाती है कि बहुत प्रकार के प्राकृतिक बादल सिल्वर आयोडाइड या इस से भी अच्छे रूप मे लैड आयोडाइड बीजन से प्रभावित होकर बरस पडेंगे। इसी प्रकार से यह विश्वास करने के कारण है कि थोड़ा और ठण्डा करने से प्राकृतिक न्यूक्लिया के द्वारा ही वर्षा उत्पन्न की जा सकती है। बादलों के बीजन की क्रियाविधियों के विषय मे दी गयी युक्तियों का आधार यही है। इससे इनकार नही किया जा सकता कि न्यूक्लिया के समावेश से कुछ दशाओं में वर्षा उत्पन्न हो जायगी। यह प्रश्न केवल वर्षा की मात्रा का है जोकि मनुष्य द्वारा उत्पन्न किए विघ्न के बिना स्वतः ही प्राकृतिक रूप में हो गयी होती है।

जैसे जैसे उष्ण कटिबन्धीय बादलों के विषय में समाचयन प्रक्रिया की जानकारी बढी है, बीजन की अन्य युक्तियाँ आजमायी गयी हैं। इस दशा में जमने मे सहायता के लिए न्यूक्लिया की जरूरत नही, परन्तु अपेक्षाकृत बड़ी बूंदों या कणों की जरूरत है जिन पर कि वर्षा की बूंदें विकसित होकर बडी बन सकें। इस समस्या का स्पष्ट तथा सुगम समाधान यह है कि किसी वायुयान द्वारा ले जायी गयी पानी की टँकी से उस बादल में जल की बौछार छोडी जाय। इस प्रकार के कुछ समय पहले किए गए आस्ट्रेलियन परीक्षण उत्साहवर्द्धक सिद्ध हुए हैं। ग्यारह मे से दस परीक्षण, जिनमे पानी के कुछ सौ गैलन बादलो मे बौछार के रूप में छिडके गये, सफल सिद्ध हुए, और वर्षा हो गई। इनमें से चार परीक्षणों मे हुआ बादलों का अवक्षेपण (अथवा वर्षा) 'भारी' कहा जा सकता था। कैरेबियन मे किए गए ऐसे परीक्षणो मे भी कुछ सफलता मिल चुकी है। "बीजन" की इस विधि मे भी जैसे कि शुष्क बर्फ बीजन विधि में भी देखा गया था, वायुयान की आवश्यकता होती है। इस प्रकार व्यय-साध्य होने मे यह विधि प्रचलित नही हो सकेगी। तो भी पश्चिमी आस्ट्रेलिया के सूखे से प्रभावित प्रदेशों में बादलों को वर्षा के लिए प्रेरित करने की एक अन्य विधि की परीक्षा की जा रही है। एक वायुयान द्वारा तीन सौ फुट लम्बे दो बिजली के केबुलों को जिनपर पचास हजार वोल्ट की विद्युत् का आवेश होता है, बादलों मे से गुजार कर

बिन्दुकों को विद्युत् आवेशमय करने का यत्न किया जाता है, ताकि उनका परस्पर समानयन हो सके।

भूमितल पर ही कार्यान्वित हो सकने वाली कुछ अन्य विधियाँ सोच कर निकाली जा रही है। पूर्वी अफ्रीका में गुब्बारो के साथ बम बाध कर बादलो मे छोड दिये जाते हैं। इन बमों में बारूद के अतिरिक्त बहुत बारीक पिसा हुआ नमक भी होता है जोकि बम के फटने से सम्पूर्ण बादल में फैल जाता है। पाकिस्तान में जहाँ पर जलवायु बहुत शुष्क है, नमक से बनी धूलि को उडा कर वायु मे मिलाया जाता है या सिर्फ सडकों पर फैला दिया जाता है, ताकि उन सडको पर यातायात के होने से वह नमकमय धूलि उडकर हवा में जा मिले। इन विधियो के यद्यपि परिणाम निश्चयात्मक नही है फिर भी अधिक अन्वेषण की अपेक्षा रखते है।

इस बात की भी सभावना है कि बादलो के अतिबीजन द्वारा ऐसे परिणाम प्राप्त किये जा सकते है, जिनसे कि ओलाबारी और बिजली का गिरना नियन्त्रित हो सके, और संभवतः आगे चलकर किसी दिन नदियो मे आने वाली बाढ़ें भी रोकी जा सके। प्रतिवर्ष लाखों ही डालरों के मूल्य की फसलें ओलो द्वारा नष्ट होती है। केवल अमेरिका में औसत रूप में १ करोड़ ६० लाख एकड़ इमारती लकडी बिजली गिरने से नष्ट हो जाती है, और २७ करोड़ ५० लाख डालर के मूल्य की सम्पत्ति नदियो की बाढ़ों द्वारा नष्ट हो जाती है। ऐसे विष की तरह, जो थोड़ी मात्राओ मे तो घातक होते हैं, परन्तु बड़ी मात्राओ मे वमन उत्पन्न करके विष को बाहर निकालते हैं, न्यूक्लीया की अधिक संख्या भी प्रचण्ड मौसमी प्रभावो को रोक सकती है। न्यूक्लीया की बड़ी संख्या यदि बादल में निश्चित मात्रा मे उपस्थित जलवाष्पो के लिए प्रतियोगी बने तो कोई भी न्यूक्लीया इतना बड़ा नही बन पायेगा कि वह वर्षा की बूँद का आकार धारण कर सके।

दक्षिणी अफ्रीका के पूर्वी अन्तरीप पर लांगक्लूफ मे निरन्तर कई वर्षो से वहा के कृषक फ्रांस मे निर्मित सिल्वर आयोडाइड से भरे हुए राकेट गर्जन मेघो मे छोड रहे हैं। अब तक वे ओले बरसाने वाले हानिकारक बादलों से सामान्य वर्षा प्राप्त करते रहे हैं। गत वर्षों में वैसे ही बादल ओले बरसाने के कारण उस प्रदेश की प्रसिद्ध सेब की फसल को नष्ट कर देते थे। इस प्रक्रिया की थ्योरी (अभी इसको थ्योरी ही कहा जा सकता है) यह है कि सिल्वर आयोडाइड बादलो के अवक्षेपण की क्रिया में तेजी लाना है, ताकि बड़े ओले बनने का अवसर ही न मिल सके।

'अति बीजन' कुछ एक विशेष अवस्थाओं में वर्षा की भी आशा दिलाता है। एरिजोना मे ग्रीष्मकाल में वर्षा प्रायः नहीं होती जब तक कि वायुमण्डल में इतनी आर्द्रता न हो जो एक इंच से अधिक वर्षा बरसा सके। ऐसे बादल जिनमे आर्द्रता की मात्रा कम होती है प्राय. बिना अवक्षेपण के ही उडकर आगे चले जाते हैं। १९५७ ई० के ग्रीष्मकाल में सिल्वर आयोडाइड से 'अति बीजन' की, इस कल्पना पर परीक्षा की गई कि कुछ बादलों को प्रेरित किया जा सकता है कि वे वहीं रहकर बढ़ते जाएँ

और इस तरह अधिक वर्षा हो। इन परीक्षाओं से प्राप्त परिणाम आशाओं की पुष्टि करते है। जिन दिनो मे 'बीजन' किया गया तब बिना बीजन वाले दिनों की अपेक्षा वर्षा १५ प्रतिशत अधिक हुई। इस तथ्य की इससे भी पुष्टि मिलती है कि उन परीक्षणो में नौ दिनो मे से आठ अधिकतम वर्षा वाले ऐसे दिन थे जिन में एक से अधिक इंच वर्षा हुई और ये दिन वही थे जिनमें बीजन का प्रयोग किया गया था।

बीजन के इन प्रयत्नों की निशानी मौसमी चक्र का केवल एक बिन्दु है। प्रकृति के इस चक्र मे अन्य ऐसे स्थल भी हैं, जहा आक्रमण किया जाय तो संभवतः अधिक लाभ हो। स्मरण रहे कि वायुमण्डल एक प्रकार का महाकाय इंजन है जो कि ध्रुवी क्षेत्रो में उस अतिरिक्त ताप के कुछ अश का विसर्जन करता है, जो इसे पृथ्वी पर भूमध्य रेखा के समीप के भागो पर सूर्य से प्राप्त होता है। यह कार्य वायु के सचार एवं पानी के वाष्पीकरण तथा सघनन की उष्मागतिक क्रियाविधि द्वारा सम्पन्न होता है। कम से कम सिद्धान्त रूप से मौसम को विकिरण द्वारा अन्तरिक्ष से प्राप्त ताप और विर्सजित ताप के सन्तुलन मे अथवा वाष्पीकरण-सघनन चक्र में हस्तक्षेप करके बदला जा सकता है। आने वाले विकिरण मे हस्तक्षेप करने की विधि यह होगी कि उसका कुछ भाग परावर्तित कर दिया जाय। इसमें सन्देह नही है कि स्ट्रेटोस्फीयर मे यदि धूलि अथवा धुएं का एक खोल पृथ्वी के चारो ओर फैला दिया जाय तो उसकी थोडी मात्रा भी सौर विकिरण के पर्याप्त भाग को रोक देगी। यदि एक एक-समान बादल स्ट्रेटोस्फियरिक तल पर निर्मित किया जाय तो वह पर्याप्त समय तक वहा स्थिर रहेगा और भूमि-पृष्ठ पर तापक्रम अवश्य ही कम हो जायेगा (ध्यान रहे गणनानुसार इस बादल को बनाने के लिए १० लाख टन सामग्री की आवश्यकता होगी)। वायुमण्डलीय संचार मे अन्य सम्बन्धित परिवर्तन भी होंगे जैसे तूफान तथा वर्षा का आना।

कम ताप की अपेक्षा यदि अधिक ताप उत्पन्न करना हो तो यह भी संभव हो सकेगा। निःसन्देह हम सूर्य से प्राप्त होने वाले ताप को बढ़ा नही सकते हैं। परन्तु हम ऐसा प्रबन्ध अवश्य कर सकते है जिससे कि भूमि पर आने वाले ताप का विकिरण अथवा पृथ्वी से बाहर निकल जाना कम हो जाए। ध्रुवीय बर्फ सौर प्रकाश की ऊर्जा की अपेक्षाकृत अच्छी परावर्तक है और पृथ्वी के अन्दरूनी ताप की अच्छी विकिरक भी। परन्तु यदि इन क्षेत्रों को रंगदार द्रव्य की अत्यन्त सूक्ष्म तहों, जैसे कि काले काजल, से ढक दिया जाय तो परावर्तन-विकिरण प्रक्रिया मे गडबड उत्पन्न हो जायगी। बर्फ की अधिक मात्रा पिघलेगी, जो कि स्थानीय मौसमी परिस्थितियो को बदल देगी। सभवतः उससे सम्पूर्ण संसार की मौसमी परिस्थितियां बदल जाएँ ?

जलसेना के वैज्ञानिको ने मौसम को इच्छानुसार बना लेने की एक अन्य विधि निरूपित की है। इसमें वे ताप-अवशोषण के सिद्धान्त को काम मे लाये हैं। एक वायुयान द्वारा कार्बन के सूक्ष्मकणों को वायुमण्डल में विर्सजित किया गया। जार्जिया के तट के साथ-साथ किए गए इन परीक्षणों मे यह देखा गया कि कही बादल बने और कहीं बादल अन्तर्हित हो गये। जब बारीक पिसे सूक्ष्म कार्बन कणों के डेढ़ पौण्ड को एक बड़े

बादल की चोटी पर छिड़का गया जो पांच हजार फुट से ग्यारह हजार फुट की ऊंचाई तक फैला हुआ था तो वह बीस मिनटों में अदृश्य हो गया। परन्तु जब कार्बन को वायु की एक आर्द्र तह पर चार हजार फुट की ऊंचाई पर फैलाया गया तो जहां पहले बादल नहीं था, वहां पर बादल प्रकट हो गया। स्पष्टतया पहले उदाहरण में कार्बन कणों ने सूर्य का पर्याप्त ताप ग्रहण कर लिया और इससे बादलों को अधिक ऊंचाई पर पड़ने से जो ठण्डा हो जाना चाहिये था, वह नहीं हो सका और दूसरे उदाहरण में ताप के अवशोषण ने उस बादल के अन्दर ऊष्मीय अस्थिरता ला दी, जिसके परिणामस्वरूप वायु का वह स्तम्भ अथवा भाग और ऊपर बढ़ गया। तदनन्तर यह वायु जब ऊंची और शीत तह में पहुंची तो फिर बादल बन गए। क्या अन्य अवस्थाओं में भी सूक्ष्मकण मौसम को बदलने के प्रभाव प्रदर्शित कर सकते है, वह अभी देखना शेष है, परन्तु कोहरे को दूर करने तथा गर्जन-मेघों और तूफानों को छिन्न-भिन्न करने की सम्भावनाएं काफी अधिक हैं।

हाइड्रोलाजिकल चक्र (वाष्पीकरण तथा संघनन प्रवेग) में परिवर्तन की भी एक स्पष्ट संभावना है। जैसा कि पिछले मामलो मे था, हम मौसम को अपनी इच्छानुसार अपनी ओर खींच सकेंगे, या धकेल सकेंगे। बड़े पैमाने की योजनाएं अत्यधिक पानी को जलाशयों में रोककर ऐसे नये जलपृष्ठ बना देंगी, जहां से वृहत्मात्रा मे जल वाष्प उठकर वायुमण्डल में सम्मिलित हो सकेंगे। जैसे-जैसे अधिक जलवाष्प उत्पन्न किया जाएगा तो अवश्य ही कहीं न कहीं अधिक वर्षा होगी। इसके विपरीत यदि झीलों, नदियों तथा समुद्र से वाष्पीकृत होने वाले जल की मात्रा को कम करके वाष्पीकरण मे रुकावट डाल दी जाय तो इससे निश्चित ही अवक्षेपण में कमी होगी। न कार्य के लिये रासायनिक पदार्थों की एक पतली तह पानी के ऊपर फैलानी होगी। ा पाया गया है कि शान्त जलाशयों में कुछ अलकोहलों की बहुत ही पतली तह र्क कुछ अणुओं जितनी मोटी) पानी के पृष्ठ पर फैला दी जाय तो वाष्पीकरण में ...ग ४० प्रतिशत कमी हो जाती है।

वास्तव मे अभी तक किये गये प्रयोगों के आधार पर मौसम में परिवर्तन सा सकने के महत्त्व का मूल्यांकन इतनी जल्दी नहीं किया जा सकता, परन्तु तथ्य विदित हुए हैं वे इस बात के सूचक हैं कि सामान्य रूप से इस प्रकार जा सकता है। यह संभव है कि मौसम में हस्तक्षेप कुछ दशकों में ही विकसित हो जायेगा। परन्तु इस समय यह अनुमान लगाना कठिन तक यह कार्य सम्पन्न हो सकेगा। मौसम नियन्त्रण कई प्रकार समस्याएँ भी उत्पन्न कर देगा क्योंकि संसार के वायुमण्डल होता है कि कोई भी बड़ा परिवर्तन यदि संसार के एक भाग के लि तो दूसरे भाग के लिये हानिकारक हो सकता है। मौसम को रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकेगा। तूफान उत्पन्न करके दूसरे देश को हानि पहुंचा सकता है। यहीं पर अन्तर्राष्ट्रीय

को रोका जा सकता है और इस प्रकार सूखा उत्पन्न करके फसलों को नष्ट किया जा सकता है। फिर भी इस तरह के विचार का अभी समय नहीं आया है कि कोई राष्ट्र मौसम पर नियन्त्रण करना सीख कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर प्रभुता स्थापित कर सकेगा।

ऐसे भविष्य की कल्पना पर जब कि मानव का तत्वों पर नियन्त्रण होगा, कुछ लोग चिल्ला उठेंगे—"रुको !" "पर्याप्त हो गया।" बहुत व्यक्ति उस सामान्य खतरे को व्यक्त करेंगे जो उस व्यक्ति के भाग्य में बदा है जो महान् और शक्तिशाली प्राकृतिक शक्तियों के मार्ग में हस्तक्षेप करने का यत्न करेगा। ऐसा पहले से ही होता रहा है; आदि मानवों के विधि-निषेध तथा पौराणिक कहानियाँ इस बात की पर्याप्त साक्षी हैं। इकारस, जिसके पख मोम तथा परों से बने थे, उड़ते-उड़ते सूर्य के पास चला गया और नष्ट हो गया। प्रोमीथियस को सदा के लिए शारीरिक यन्त्रणा का दण्ड दिया गया था क्योंकि उसने आग को चुरा लिया था और मानव को इसका उपयोग बता दिया था। इस बीसवीं शताब्दी मे कई लोग वैक्सीन औषधियों को बुरा-भला कहते हैं। कीटनाशक औषधियाँ कुछ लोगों के विचार मे केवल कीट की उत्कृष्ट नस्ल पैदा करने में परोक्ष-रूप मे सहायक है, जिन पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण न हो सकेगा। वे कहेंगे कि मौसम में हस्तक्षेप से ससार केवल एक अर्द्धस्थायी रेगिस्तान ही बन जायगा।

इसके ठीक विपरीत मौसम नियन्त्रण को यदि बुद्धिमत्ता से प्रयुक्त किया जाए तो सब राष्ट्रों के लिए वर्षा की पर्याप्त मात्रा प्राप्त हो सकेगी। रेगिस्तान लहलहाते खेतो मे परिणत किये जा सकेंगे। कृषि में जो अनिश्चितता है, बहुत सीमा तक दूर हो सकेगी। यदि फसल की पैदावार पहले से ही ज्ञान हो सके तो ठीक उतनी ही फसल की मात्रा बोई जाया करेगी जितनी कि आवश्यक हो। बाढ़ों और अनावृष्टि का संकट रोका जा सकेगा।

बारहवाँ अध्याय

जलवायु

किसी स्थान की जलवायु का अभिप्राय वहां पर सम्पूर्ण वर्ष आने वाले मौसमों का कुल योग होता है। मौसम की तरह जलवायु सूर्य द्वारा निर्देशित होती है तथा पृथ्वी की सब भौतिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव उस पर पड़ता है। ये परिस्थितियां हैं : सागर के समीप अथवा दूर होना, पहाड़ो की उपस्थिति या अनुपस्थिति, वहां पर चलने वाली हवाएं इत्यादि। विशिष्ट स्थानों की जलवायु अपेक्षाकृत एक-सी रहती है, इसका कारण यह है कि यद्यपि वायुमण्डल में स्पष्ट एव द्रुत परिवर्तन होते रहते है, तथापि इसमे एक विशेष गुण होने के कारण वहाँ एक ही मौसमी चक्र चलता रहता है। गर्म जलवायु में कभी-कभी शीत दिन भी आते है और इसी प्रकार शीतल जलवायु वाले स्थानों पर गर्म दिन भी। शुष्क जलवायु वाले स्थानों में वर्षा भी होती है और आर्द्र जलवायु वाले स्थानों पर लम्बे समय के लिए अनावृष्टि या सूखा भी। ऐसा होने पर भी पृथ्वी के प्रत्येक स्थान पर ताप, शीत, वर्षा तथा धूप का विशिष्ट संयोजन है। स्पष्टतया प्रत्येक स्थान के बारे में अलग-अलग विचार सभव नहीं होगा, परन्तु कुछ सीमा तक पृथ्वी पर सामान्यतया पाये जाने वाली विभिन्न प्रकार की जलवायु की परीक्षा कर सकते हैं। हम जलवायुओं के प्रभाव का अध्ययन कर सकते है। इसके साथ-साथ दीर्घ-कालीन जलवायु परिवर्तनों के अतीत में हुए तथा भविष्य मे होने वाले परिणामों का पता लगा सकते है।

किसी स्थान की जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियों के निर्धारण के लिए सबसे स्पष्ट कारण उस स्थान का अक्षांश है। हम देखते हैं कि बिना किसी प्रकार के अपवाद के पृथ्वी के ध्रुवों पर वायु ठण्डी होती है। विपुवतीय क्षेत्रों पर केवल कुछ ऊंचे पहाडो की चोटियों के आस-पास ही मौसम गर्म नही होता, शेप सब जगह गर्मी होती है। विपुवत् रेखा से ध्रुवों की ओर चलें तो क्रमशः आर्द्रगर्म, शुष्कगर्म, आर्द्रशीत तथा अन्त में शुष्कशीत मौसम के क्षेत्र आते है। यह है चार प्रकार की प्राथमिक जलवायु। परन्तु इनके आपस मे मिलने से बहुत प्रकार के सकरों, विभिन्नताओं, रूपान्तरो तथा विशिष्टताओं वाले मौसम भी बन जाते है।

संसार की समस्त जनसंख्या का बहुत सा भाग ऐसी जलवायु में रहता है जिसे शीतोष्ण जलवायु कहते है। जलवायु की ये दो पट्टिकाएँ है जो कि लगभग तीस और पचास अंश अक्षांश के मध्य में ग्लोब के उत्तर तथा दक्षिण

मे स्थित हैं। इन स्थानों की जलवायु सबसे अधिक बदलती रहती है। ग्रीष्मकाल में शीतोष्ण कटिबन्ध या तो शुष्क-गर्म होते हैं अन्यथा आर्द्र-गर्म। आकाश में गर्जन के साथ तूफान प्राय: आते रहते हैं, और सिंचाई योग्य वर्षा लाते हैं। कभी-कभी ग्रीष्मकाल मे भी ध्रुवीय वायु इस क्षेत्र में घुस आती है। जैसे ही कि पतझड़ की ऋतु आती है ध्रुवीय वायु अधिक चचल हो जाती है। सर्वप्रथम वायु अपना प्रभाव बहुत कम दिखाती है, परन्तु धीरे-धीरे वह प्रभाव बढता जाता है। एक दिन मौसम सुहावना होता है, जब कि अगले ही दिन हिमपात से भूमि ढक जाती है। शीतकाल पहुंचने तक ध्रुवीय वायु अपना प्राय: पूर्ण नियत्रण स्थापित कर लेती है।

शीतोष्ण कटिबन्धो मे दिन और रात मे, तथा गर्मी और सर्दी में तापक्रम का परिवर्तन खास तरह का होता है। लम्बे समय की औसत के अनुसार इन तापक्रमो मे काफी अन्तर रहता है। किसी भी शीतकाल में पहले शीतकाल की अपेक्षा तापक्रम आठ से दस अंश गर्म अथवा ठण्डा हो सकता है। इसी प्रकार से ग्रीष्मकालीन ताप भी विभिन्न हो सकता है। तापक्रम की महान् विभिन्नताओं के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार के सकट जैसे गर्म और ठण्डे सीमाग्र(फ्रन्ट), टौर्नेडो तूफान (बवंडर), गरज वाले तूफान, प्रभजन, रेत के तूफान, धूलमय आंधियां तथा बर्फीले तूफान इन कटिबन्धों मे आम तौर पर आते रहते हैं। इस प्रकार शीतोष्ण कटिबन्ध से अभिप्राय मध्य अक्षांश से है और इसकी विशेष पहचान बदलते रहता है। दूसरे शब्दों में शीतोष्ण कटिबन्ध संसार की मौसमी पट्टिकाएँ हैं।

शीतोष्ण कटिबन्धों से ध्रुवों की ओर आने पर ध्रुवीय क्षेत्र आते हैं। इन क्षेत्रो में साइबेरिया, उत्तरी कनाडा, ग्रीनलैण्ड तथा दक्षिणी ध्रुव सम्मिलित हैं। वहां पर अधिकतर अविकसित क्षेत्र हैं, जो कि मानव द्वारा अपना उपयोग किये जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये क्षेत्र न तो बिल्कुल बिना आबादी के हैं, और न ऐसे हैं जिन पर मानव का वास हो ही नहीं सकता। उत्तर ध्रुवीय क्षेत्र विशेषकर कुछ स्थानों पर अविश्वसनीय रूप से उपजाऊ है। इस स्थान की चौबीस घण्टे रहने वाली ग्रीष्मकालीन धूप में वनस्पतियां आश्चर्यजनक शीघ्रता से बढ़ती हैं। विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां वहां से देखने मे आती हैं और मच्छर वहां इतने होते हैं जितने ससार भर मे कहीं और न होते। परन्तु इस क्षेत्र का मौसम उतना ही बुरा हो सकता है जितने कि उसके मच्छर। कभी-कभी तो उत्तरी ध्रुव पर भी ग्रीष्मकाल मे गरज वाले तूफान चलते हैं। शीतकालीन झंझावात तथा बर्फीले तूफान उस सारे क्षेत्र को बर्फ से ढक लेते हैं और सम्पूर्ण प्रदेश सुनसान हो जाता है। तापक्रम शून्य फारेनहाइट से सत्तर और नब्बे अंश के मध्य कम हो जाता है। विशेष बात यह है कि वायुयानों की उड़ान के लिए हवा स्थिर रहती है। इसका कारण यह है कि वायु ठण्डी होने से भारी होकर भूमि के ऊपर एक तह के रूप में बैठ जाती है।

सूर्य का ग्रीष्मकाल में क्षितिज से ऊपर रहना, और फिर शीतकाल मे इसके जाना ध्रुवीय दृश्य का महत्वपूर्ण अंग है। मध्य-ग्रीष्म में भी सूर्य ऊर्जा की

बहुत मात्रा हर समय फेंकता रहता है। बर्फ से ढकी इस चपटी भूमि पर बहुत-सा ताप परावर्तित होकर परे चला जाता है परन्तु दक्षिणी ढलान बसन्त ऋतु में शीघ्र ही गरम हो जाते हैं और बर्फ बड़ी शीघ्रता से पिघलने लगती है। इन स्थानों पर स्थानीय मौसम अच्छा होता है। उत्तरी ध्रुव महाद्वीप मे ग्रीष्मकाल स्वल्प, शीतल तथा सामान्य रूप से नीरस होता है। जुलाई मास मे औसत तापक्रम ४० अंश सेन्टीग्रेड के लगभग होता है परन्तु ऐसे दिन भी आते है जबकि थर्मामीटर का पारा ७० अंश तक चढ़ जाता है। तब वर्षा या हिमपात प्रायः होते रहते है यद्यपि भारी वर्षा नही होती। फरवरी मास का औसत तापक्रम शून्य से २५ अंश के लगभग रहता है परन्तु न्यूनतम तापक्रम कही कम होता है। सामान्यतया शीतकालीन मौसम साफ होता है। और हिमपात नही होता, क्योंकि वायु अतिशीतल होने के कारण अपेक्षाकृत बहुत कम जलवाष्पों को धारण कर सकती है। वास्तव मे उत्तर ध्रुवीय क्षेत्रो में वार्षिक वर्षा कुछ रेगिस्तानी क्षेत्रों से भी कम होती है। उत्तर ध्रुवीय क्षेत्रो में झीलों, कीचड़ और दलदलों से ढकी भूमि ऊसर भूमि जैसी लगती है क्योकि भूमि पर कई फुट गहरी बर्फ जमी होने के कारण नालियां निकालने मे रुकावट होती है।

वर्फीले उत्तर ध्रुवीय तटों के साथ-साथ के प्रदेशों मे जलवायु अन्दरूनी भागों की अपेक्षा कही अधिक कठोर होती है यद्यपि वहां उतना शीत नही होता। लम्बी शीत ऋतु नीरस होती है जब कि छोटी ग्रीष्म ऋतु कोहरे से भरी होती है और वर्षा अधिक होती है। जहाँ नदियाँ उत्तर सागर में गिरती हैं, बसन्त ऋतु की वर्षा और पिघली वर्फ जम कर रास्ते रोक देती है और बाढ़ों का कारण बनती हैं जिसके कारण वह प्रदेश दुर्गम बन जाता है। जिन तटों के पास से उष्ण समुद्री धाराए गुजरती है, जैसा कि दक्षिणी आइसलैण्ड तथा दक्षिण-पश्चिमी स्पीट्सवर्गन मे होता है, वहां की जलवायु यही अधिक सुहावनी होती है। ग्रीनलैण्ड के तट शीतकाल में विशेष ठण्डे नही होते तथा ग्रीष्मकाल में तो वहां पर ७०° अंश से ऊपर के तापक्रम भी अंकित किये गये है। दक्षिणी ध्रुव चूंकि उभरा हुआ स्थल है, इसलिये उत्तरी ध्रुव की अपेक्षा बहुत ठण्डा और कही अधिक तूफानी हैं। ग्रीष्मकाल मे तापक्रम प्रायः शून्य रहता है और शीत-कालीन तापक्रम तो शून्य अंश फारेनहाइट से एक सौ अंश नीचे पहुच जाता है। वहां पर खोजकर्त्ताओं के एक रूसी दल ने शून्य से १४४ अंश कम का तापक्रम भी अंकित किया है। साथ ही वहां पर मध्यग्रीष्म में भी वर्फीले तूफान आश्चर्यजनक रीति से अचानक ही आ जाते हैं।

ध्रुवीय क्षेत्रो की शुष्क शीत के विपरीत विषुवतीय पट्टिका के इलाकों में आर्द्र ऊष्मा रहती है। इस क्षेत्र में केन्द्रीय अमेरिका, ब्राजील, कांगो तथा ... सम्मिलित हैं। यहां पर जलवायु लगातार गर्म, आर्द्र रहता है और ... होती है। गर्म से गर्म महीने और ठण्डे से ठण्डे महीने में तापक्रम में अन्तर होता है। इसी प्रकार दिन और रात के तापक्रम में भी कम है। सामान्य ऊंचाइयों पर तापक्रम प्रायः १०० अंश से ऊपर

साठ अंश से कम नहीं होता। परन्तु उस वायुमण्डल की अत्यधिक आर्द्रता उस क्षेत्र को टर्किश बाथ के समान बना देती है। वनस्पतियां अत्यधिक मात्रा में उगती हैं। पराश्रयी पौधों की कई किस्में पायी जाती है। धातुओं को जंग लग जाता है, तथा चमड़े कागज और कपड़ों पर शीघ्र ही फफूंदी लग जाती है। जलवाष्पों से संतृप्त वायु चलती रहती है और प्रतिदिन ही गरज भरे तूफान के साथ वर्षा होती है तथा बाढ़ें आती हैं। यद्यपि गरज भरे तूफान प्राय: आते हैं और कई बार उनमें काफी प्रचण्डता भी होती है फिर भी वे प्रभंजन (हरीकेन) तथा टौर्नेडो जितने विनाशकारी नहीं होते।

विषुवतीय पट्टिका तथा शीतोष्ण कटिबन्धों के मध्य २५ अंश अक्षांश के आस-पास गर्म परन्तु शुष्क उष्णकटिबन्धीय प्रदेश है। विषुवतीय पट्टिका के खण्ड में से जो वायु ऊपर चली जाती है, वह अपनी आर्द्रता का अधिकांश भाग खाली करने के पश्चात् इन प्रदेशों में नीचे उतर आती है। प्रारम्भ में ही यह वायु गर्म होती है और नीचे उतरने से और गर्म हो जाती है, और वह नीचे की पृथ्वी को भून देती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि पृथ्वी के ऊपर चारों ओर रेगिस्तानों की एक पट्टी बन गयी है जिसमें सहारा, लिबिया, अरब तथा आस्ट्रेलिया के महान् रेगिस्तान शामिल हैं। इन रेगिस्तानों में सबसे ऊँचे तापक्रम पाये जाते हैं और पृथ्वी पर सबसे शुष्क जलवायु है। छाया में भी वायु का तापक्रम १३० अंश तक पहुंच जाता है और सूर्य से सीधी किरणें पड़ने से जमीन अत्यधिक तप जाती है और तापक्रम १७० अंश तक पहुँच जाता है। रेगिस्तान में रातें कुछ शीतल होती हैं। रात और दिन के तापक्रम में ६० अंश का अन्तर कोई असाधारण बात नहीं है। वायु में आर्द्रता की मात्रा कम होने के कारण यह अन्तर और अधिक प्रतीत होता है। वर्षा बहुत कम या नहीं होती। पेरु के रेगिस्तानों में ऐसे स्थान है जहां पर सदियों से कभी वर्षा नहीं हुई।

रेतीले तूफान और धूलभरी आंधियां बड़े रेगिस्तानों में आम बात है, खासकर सहारा में। बहुत ही कम आने वाले वर्षामय तूफान के बाद के समय को छोड़ कर रेगिस्तान में नीचे की वायु निरन्तर रूप से धूल के कणों द्वारा धुंधली रहती है। गर्म मध्यान्हों में ऊपर की ओर उठती हुई वायु धाराएँ भंवर के समान घूमते हुए बालू के स्तम्भ बना देती हैं। जब वायु तेजी से गति कर रही होती है तो सारी भूमि कांपती हुई प्रतीत होती है। ऐसे समयों में पैदल चलना कठिन हो जाता है। कम ऊँचाई पर उड़ान सुविधाजनक नहीं होती, क्योंकि भूमि तल के पास अधिक गर्मी होने के कारण वायु की तह कुछ भारी और अस्थिर हो जाती है। ऊँचाई पर उड़ान करने की परिस्थितियां शुष्क उष्णकटिबन्धीय जलवायु में साधारणतया अच्छी होती हैं, क्योंकि बादल रहित आकाश में दिखाई बहुत अच्छा देता है।

रेगिस्तान केवल ताप, रेत और हवाओं वाला ऊजड़ क्षेत्र नहीं है। वर्षा हो जाने पर वनस्पतियां एकदम उग आती हैं, और युवावस्था तक पहुँच कर कुछ दिनों में ही बीज पैदा कर देती हैं और फिर उसी भूमि में निष्क्रिय रूप से पड़ी रहती हैं। अव-...ों के पुन: अनुकूल होने पर उग आती है। कूपों के चारों ओर और ऐसे स्थानों पर

जहाँ सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध है, रेगिस्तान एक उद्यान बन जाता है। मिस्र, ईराक और पश्चिमी अमेरिका के कई भागों में सिंचाई और बहुतायत से होने वाली धूप दोनों चीजें मिलकर फसल को सारा साल उगाने में मदद देती हैं। जहाँ-जहाँ जल उपलब्ध है, जैसा कि मिस्र और पश्चिमी अमेरिका के सिंचाई वाले प्रदेशों में है, तीन-चार गुना फसल होती है।

यद्यपि जलवायु चार प्रकार की गिनाई गयी है, फिर भी इनमें से विशुद्ध रूप में एक ही प्रकार की जलवायु उतनी ही विरल है, जितना कि पृथ्वी में कोई शुद्ध खनिज। विभिन्न प्रकार की जलवायुओं का आपस में मिलकर संकर बन जाने का कारण सूर्य का वर्ष भर में आगे-पीछे होना है। जून मास में कर्क रेखा पर होने के पश्चात् सूर्य अपना स्थान बदल लेता है, और दिसम्बर मास में ठीक मकर रेखा के ऊपर होता है। सूर्य के इधर-उधर स्थानान्तरित होने से जलवायु में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन की एक मनोरंजक बात यह है कि उस स्थान का अधिकतम तापक्रम सूर्य की स्थिति के लगभग एक महीना पीछे रहता है, अर्थात् उत्तरीय गोलार्द्ध में अधिकतम औसत तापक्रम जून के मध्य के स्थान पर जुलाई के मध्य में होता है। इस व्यवहार की व्याख्या कठिन है, परन्तु उसमें वह समय सम्मिलित है, जो भूमि के गर्म होने के लिए और वायु की वर्तमान प्रवाह का समजन करने के लिए जरूरी है।

यह स्पष्ट है कि दो विभिन्न प्रकार के जलवायु—कटिबन्धों के मध्य में जो क्षेत्र आ जाता है वहाँ पर सूर्य के आगे या पीछे होने के अनुसार दोनों प्रकार के जलवायु उस क्षेत्र में पहुँचते हैं। आर्द्र और शुष्क उष्णकटिबन्धी जलवायु के मध्य उपस्थित प्रदेश में दोनों प्रकार की जलवायु का मिश्रण होता है। इससे उष्णकटिबन्धी मानसून बन जाता है। विशिष्ट मानसून क्षेत्रों में बर्मा, भारत, अफ्रीका, सूडान तथा उसकी [illegible] सिया सम्मिलित हैं, जहाँ पर ग्रीष्मकाल के आने के साथ-साथ बहुतायत से विषुवतीय तथा भरे तूफान तथा वर्षा आती है। शीतकाल के आते ही वर्षा अदृश्य हो जाती है, और शुष्क उष्ण कटिबन्धी अवस्थाएँ उपस्थित हो जाती हैं। शुष्क ऋतु में [illegible] इसी प्रकार से झड़ जाते हैं, जैसे कि शीतोष्ण कटिबन्धों की शीत ऋतु में। उष्णकटिबन्धी मानसून का प्रतिलोम "भूमध्यसागरी जलवायु" है, जो शीतकाल में आर्द्र तथा [illegible] और ग्रीष्मकाल में शुष्क तथा गर्म होती है। भूमध्यसागरीय जलवायु इसका [illegible] इसलिए है क्योंकि भूमध्यसागर के उत्तरी तटों पर यह मिलती है। परन्तु इस प्रदेश के अतिरिक्त भी संसार के कई भागों में यही जलवायु मिलती है। इटली, स्पेन, [illegible] यूनान, टर्की, फिलस्तीन के अतिरिक्त यह भूमध्यसागरीय जलवायु दक्षिण-पश्चिमी आस्ट्रेलिया, केन्द्रीय चिली तथा दक्षिणी कैलिफोर्निया में भी पायी जाती है।

[illegible] और जल का वैषम्य स्थलीय क्षेत्रों की जलवायु को और [illegible] देता है, क्योंकि स्थल की अपेक्षा एक समुद्र अधिक गुप्त है जिसमें ताप को धारने से [illegible] की क्षमता रखता है। यह धीरे-धीरे गर्म होता है और इसी प्रकार धीरे-धीरे ही ठण्डा होता है। इसका अधिकतम तापक्रम तब तक नहीं पहुँचता और [illegible]

क्रम कुछ गर्म से लेकर जमाव बिन्दु से कुछ ऊपर तक का रहता है। सागर में पाई जाने वाली प्राथमिक विषमताएं उन बड़ी जलीय धाराओं के कारण होती हैं जो उसकी गहराई में धीरे-धीरे चलती है। ये धाराएं उष्ण कटिबन्धो के गर्म पानी को उत्तरी ध्रुव तक ले जाती हैं और पुनः विषुवतीय कटिबन्धो को लौट आती हैं। परन्तु इस लौटने मे वे अपने साथ कुछ ध्रुवी क्षेत्रो की शीत भी ले आती हैं। इसके विपरीत स्थलीय प्रदेश घनी वनस्पतियो से आच्छादित पहाडी हो सकते हैं, या उनकी भूमि बजर, चपटी या पथरीली हो सकती है, और इसी कारण से उन पर द्रुतगामी मौसमी परिवर्तन हो सकते हैं।

पहाडी प्रदेशों तथा ऊंचे पठारो की जलवायु निश्चित रूप से निचले भूखण्डो से भिन्न होती है, जबकि भौगोलिक दृष्टि से उनकी स्थिति एकसी होती है। ऊँचाई के साथ-साथ वर्षा आदि के अवक्षेपण मे वृद्धि पहाडों के साथ हवाओं का सीधा टकराव होने वाले और ओट वाले पार्श्वो मे अन्तर तथा वायु के घनत्व और तापक्रम मे कमी, ये पहाडी जलवायु की मुख्य विशेषताए हैं। पर्वतो की शृखलाओं के उस ओर जहां की हवाए सीधी टकराती हैं अवक्षेपण अथवा वृष्टि प्राय अधिक होती है। सामान्य रूप से शुष्क प्रदेशो मे भी पहाड़ों की चोटियां वनस्पतियो से ढकी होती है, जब तक कि वे केवल ऊँची न हों और निरन्तर बर्फ मे ढकी न रहती हों। जब पर्वतीय शृखला समुद्र के सामने होती है तो उस ओर अवक्षेपण विशेष रूप से अधिक होता है। प्राय. दो सौ इंच एक वर्ष मे वर्षा हो जाती है। "हवाई" प्रदेश के पर्वतीय ढलानो पर वर्ष भर में चार सौ इच तक वर्षा होती है। समुद्रतल से सात या आठ हजार फुट की ऊँचाई तक, ऊँचाई के बढ़ने से अवक्षेपण भी बढता जाता है। यद्यपि यह वृद्धि ध्रुवों के पास विषुवत् वृत्त रेखा के पास की अपेक्षा कम होती है। पर्वतो के दूसरी ओर की ढलानें, जिस ओर हवाएँ नही टकरातीं, बहुत खुश्क होती हैं। वे बजर अथवा रेगिस्तान बन जाती हैं। ऊँचे हिमालय पर्वत के दूसरी ओर ही गोबी का रेगिस्तान है। हल्की वायु के कारण पड़ने वाली तेज धूप तथा तेज चलने वाली हवाए और स्फूर्तिप्रद ठण्ड ये चीजें पर्वतीय स्थानों की जलवायु को बड़ी आनन्दप्रद बनाती हैं। यद्यपि पहाडों पर अधिक वेग से चलने वाली हवाएँ प्रायः मिलती हैं, तो भी वायु के घनत्व मे कमी वायु के बल को आंशिक रूप से कम कर देती है।

हमारे अनुभव का समय सीमित होने के कारण यह मान लेना स्वाभाविक है कि जलवायु मे परिवर्तन नही होता किन्तु इससे अधिक असत्य और क्या हो सकता है। शताब्दियों के दौरान जलवायु उतनी ही परिवर्तनशील रही है जैसा कि आजकल शीतोष्ण कटिबन्ध का मौसम। पृथ्वी के भौगर्भिक इतिहास की जितनी पहुँच है, उस समय के कम से कम नौ-दसवें भाग में पृथ्वी का औसत तापक्रम आजकल की अपेक्षा पर्याप्त रूप से ऊँचा रहा है। प्राचीन काल मे लगभग २५ करोड़ वर्ष की अवधि मे प्रायः सम्पूर्ण पृथ्वी पर उष्णकटिबन्धी जलवायु रही है, और बीच-बीच में ठण्डे मौसम के काल भी रहे हैं, जिनमें बर्फ तथा तेज हिमायन के काल सम्मिलित हैं, जो कई

साल वर्ष रहे। इसके अतिरिक्त जलवायु के और भी असंख्य छोटे-मोटे उतार-चढ़ाव आ चुके हैं।

उष्ण कटिबन्धी वनस्पतियों के अवशेष पृथ्वी के दोनों ध्रुवों के पास पाये गये हैं। दोनों ही प्रदेशों में पत्थर के कोयले के संग्रह उपस्थित हैं। जहाँ तक हम जानते हैं, यह कोयला केवल वृहत् जंगलों से ही प्राप्त हो सकता है। सहारा सदा शुष्क नहीं था। लगभग दस हजार वर्ष पूर्व उत्तरी यूरोप में हिमनद (ग्लेशियर) तक बहते थे, उसी काल में अल्जीयर्स के दक्षिण-पूर्व में नौ सौ मील की दूरी पर एक बड़ा मैदान था, जो आजकल एक सूखा लगभग निर्जन रेगिस्तान है। उस समय यहाँ उपजाऊ भूमि थी और तत्कालीन आबादी उस पर आश्रित थी। उस क्षेत्र में गुफाओं में पाए जाने वाले हजारों रंग-बिरंगे चित्रों से यह ज्ञात होता है कि उस समय यह एक अवश्य ही उपजाऊ तथा सिंचित प्रदेश था। उसी समय में इंगलिश पीट की तहों में दबे मलबे से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वह क्षेत्र कभी एक खुला "टुण्ड्रा" था, जिसमें कोनिफर वर्ग के वृक्षों के कहीं-कहीं झुण्ड थे। बाद में आठ हजार वर्ष ई० पू० में इंग्लैण्ड की जलवायु और इसी प्रकार से सारे गोलार्द्ध की जलवायु कुछ गरम होनी प्रारम्भ हुई। गरम ऋतु में पनपने वाले वृक्ष, जैसे ओक तथा एल्म, इंग्लैण्ड के उस समय के दबे मलबों में पाये जाते हैं। जैसे-जैसे उत्तर की बर्फ पिघलती गयी, महासागरों में पानी का स्तर बढ़ता गया। पीट कोयले के संग्रहों पर से समुद्र के नमकीन पानी का बहना इस बात को स्पष्टरूप में प्रदर्शित करता है। ईसा पूर्व पाँच हजार वर्ष के आसपास इंग्लैण्ड द्वीप महाद्वीप से पृथक् हो गया, और तब से आजकल की-सी जलवायु रही है। यह गरम करने का विशेष चक्र तीन हजार ई० पू० के आसपास अपनी चरम-सीमा पर पहुँच चुका था। उस समय शेष संसार का तापक्रम आज से कुछ अंश अधिक था।

ईसा पूर्व तीन हजार वर्षों से लेकर ईसा बाद के सोलह सौ और उन्नीस सौ वर्षों के मध्य संसार सामान्य रूप से शीतल होता गया। हिमनदीय साक्ष्यों में रेडियो कार्बन द्वारा काल निर्धारण तथा फूलों के परागों एवं पुराने अवशेषों के अध्ययन से वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि जलवायु के तापक्रमों में चल रही कमी के दौरान कुछ छोटे आयाम के दूसरे चक्र भी चलते रहे हैं। ईसा पूर्व ५०० वर्ष से ईसा बाद १०० वर्ष तक का काल कुछ अधिक शीतल और आर्द्र था। ईसा बाद ४०० से ईसा बाद १००० वर्ष तक का समय कुछ गर्म और शुष्क रहा और फिर १३०० वर्ष से आधुनिक समय तक जलवायु फिर शीतल और आर्द्र रहने ...

पिछली शताब्दी में उत्तरी गोलार्द्ध में सामान्य रूप से १ से २ अंश ... बढ़ गया है। दक्षिणी गोलार्द्ध के विषय में पर्याप्त आँकड़े प्राप्त नहीं हैं, मध्य और निचले अक्षांशों में भी कुछ वैसी ही वृद्धि हुई है। दक्षिणी ध्रुव ... हो रहा है। निकट अमेरिका में हुए अध्ययन ... वर्षों में तापक्रम में औसत वृद्धि ५ अंशों की हो गयी है। इसके

ध्रुव पर बर्फ में खोदे गये १००० फुट गहरे गड्ढों में किए गए परीक्षणों तथा अध्ययन ने इस बात का सुझाव दिया है कि धीरे-धीरे गर्म होने की प्रक्रिया दस शताब्दी पहले से प्रारम्भ हुई। सामान्य परिवर्तन इस ढंग से हुआ है कि शीतकाल कुछ कम शीतमय हो गया है, अधिक ठण्डे क्षेत्रों में यह प्रभाव कुछ अधिक है और गर्म क्षेत्रों में कम। स्पिट्सबर्गन तथा पूर्वी ग्रीनलैण्ड में पिछले कुछ वर्षों में शरद्ऋतु के औसत तापक्रम ६ और १३ अंश अधिक गर्म रहे है, अपेक्षाकृत उन तापक्रमो के जो इस शताब्दी के प्रारम्भ मे थे। स्पिट्सबर्गन की बन्दरगाह पहले अक्टूबर से जून तक ठण्ड के कारण जमी रहती थी, आजकल यह बन्दरगाह वर्ष में सात महीने खुलती है। फिनलैण्ट में वनस्पतियां उगाने का मौसम पिछले एक सौ वर्षों मे बीस दिन लगभग बढ़ गया है। उत्तरी रूस की झीलें सात दिन बाद जमती हैं, और पाच दिन पहले बर्फ पिघलनी शुरू हो जाती है। मौन्ट्रियल में शून्य से कम के तापक्रम अठारहवी शताब्दी के अन्त की अपेक्षा अब केवल आधे रह गये हैं। हिमपात जो कि अठारह सौ अस्सी के आस-पास औसत रूप मे १३० इच था, पिछले कुछ वर्षों मे ८० इच रह गया है। कुछ एक अपवादो के साथ यह देखने में आता है कि आल्प्स से एलास्का तक हिमनद पहले की अपेक्षा सिकुड रहे है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में स्विट्जरलैण्ड में बर्फ से आच्छादित सुन्दर दृश्यो की ओर मुंह करते हुए कुछ होटल बनाये गए थे। वहाँ से आजकल बर्फ तो क्या हिमनद भी दिखाई नहीं देते। टेम्स तथा टाइबर नदियां जो शीतकाल में बर्फ से ढक जाती थी अब कई सालों से जमी नही है।

उत्तरी गोलार्द्ध के धीरे-धीरे गर्म होने का एक सुन्दर परिणाम वहाँ पर विविध प्राणिसमूह तथा वनस्पतिसमूह का पैदा होना है। जो पक्षी मौसमी संकेतो का ज्ञान रखते है वे अब उत्तर की ओर रहने के लिए चले गये है। लाल रग की चिड़िया कार्डिनल, कलगीदार फुँदकी (टफ्टेड टिटमाऊस), सारिका तथा पपीहा इत्यादि जो कि दक्षिणी प्रदेशों मे रहने वाले थे, कुछ वर्षो से उत्तरी केन्द्रीय राज्यों और न्यू-इंग्लैण्ड में देखे गए है। उन जातियो के पक्षी जो कि पहले शीतकाल मे दक्षिण की ओर आ जाया करते थे, अब साल भर उत्तर मे ही रहते हैं। उत्तरी योरोप पर भूमध्य सागर के पक्षियो का "आक्रमण" हो रहा है। ५० वर्ष पूर्व ऑपोसम वर्जीनिया के उत्तर में बहुत कम दिखाई देते थे, अब ये उत्तर तक बोस्टन मे प्राय: देखे जाने लगे हैं। हिरन, उत्तरी अमेरिका का विशेष हिरन, मूस, रैकून और बिज्जू इत्यादि भी उत्तर इलाको की ओर जा रहे है। मछलिया भी इसी प्रकार से स्थान बदल रही हैं। ह्वाईटिंग, किंग मेकेरल, हेलिबट तथा हैडॉक अब उत्तर के ऐसे प्रदेशों तक पहुच गई हैं जहाँ पर वे पहले नही पाई जाती थी। कॉड मछली जो कि पहले ग्रीनलैण्ड में मिलती ही नही थी, अब एस्कीमो लोगों का मुख्य भोजन है।

लार्च, स्प्रूस (स्नोबर वृक्ष), पीत बर्च, शूगर मेपल, ब्लैक ऐश तथा श्वेत पाइन के वृक्ष जिनके लिए शीत मौसम की आवश्यकता होती है, अब दूर उत्तर मे भी पाये जाते है। अमेरिका की मिडवेस्टर्न मक्का पट्टिका अब उत्तर की ओर ५०० मील

तक और बढ़ गई हैं, गेहूं की खेती दो या तीन सौ मील और आगे कनाडा में चली गई है। कभी शीत से जमे हुए रूसी स्टेप्पी जहाँ पहले कभी हल नही चलाया गया था, पिछले वर्षों में खेती की पैदावार देने लगे हैं। स्केन्डेनेविया के पहाड़ों पर जो शताब्दियों से बर्फ से ढके हुए थे, कुछ समय से हल चलने लगे है। जगल भी पहाडो की ढलानों पर खिसकते-खिसकते ऊपर पहुंच रहे हैं। फिलहाल यह कहना कठिन है कि इस प्रकार से निरन्तर होने वाली तापक्रम मे वृद्धि के परिणाम क्या होगे ? स्मरण रहे कि गत साठ वर्षों को छोड़कर ईसापूर्व तीन हजार वर्ष से तापक्रम धीरे-धीरे घटता जा रहा है। हो सकता है गत साठ वर्षों का चक्र उसी मे एक छोटा-सा चक्र हो। हो सकता है कि तापक्रम मे कमी पहले ही शुरू हो चुकी हो।

यदि हम ठीक प्रकार से जानते कि ये मौसमी उतार-चढाव किस कारण घटते है तो हम मौसम सम्बन्धी पूर्वानुमान कर सकने के अधिक योग्य होते कि आगामी मौसम अब की अपेक्षा गरम, ठण्डा, आर्द्र या शुष्क किस तरह का होगा। जलवायु में परिवर्तन होने के आधुनिक सिद्धान्तों में महाद्वीपों की ऊंचाई या गहराई, पृथ्वी का अपने अक्ष पर घूर्णन, पृथ्वी के कक्ष की उत्केन्द्रता, वायु मे उपस्थित धूलिकणों की मात्रा में अन्तर, महासागरो की धाराओ के प्रवाह मे अन्तर, सौर परिवर्तन तथा वायुमण्डल मे कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा में परिवर्तन सम्मिलित है। यद्यपि यह पूर्णरूप से सभव है कि उपर्युक्त कारणो में से प्रत्येक ने खास समय तथा स्थान में जलवायु पर प्रभाव डाला हो, तथापि सम्पूर्ण जगत् के जलवायु परिवर्तनों की समस्या एक रहस्य है, जिसमे प्रत्येक सदिग्ध कारण का योग हो सकता है।

पृथ्वी की स्थलाकृति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप ऋतुओ मे परिवर्तन स्वीकार करने में मुख्य आपत्ति यह है कि गत कई हजार वर्षों मे ऐसे क्षेत्रो मे बड़े-बड़े ऋतु सम्बन्धी परिवर्तन हुए हैं जहाँ कि भौगर्भिक अवस्थाएं स्थिर अथवा एक सी रही है। पृथ्वी-घूर्णन को ऋतु परिवर्तनों का कारण स्वीकार करने में यह कठिनाई है कि दोनों गोलार्द्धों में ऋतुओं मे बड़े-बड़े परिवर्तन एक साथ घटित हुए हैं, न कि बारी-बारी से। धूलिकणों की घनी धुन्ध और गुबार सूर्य की ऊर्जा का पर्याप्त भाग रोक देती हैं। यह क्रिया कभी-कभी वर्षा तक चलती रहती है, जैसे कि क्रैकाटोआ के विस्फोट के पश्चात् बहुत समय तक वायु मे धूलिकण धुन्ध के रूप में रहे थे। परन्तु बहुत कम लोग ऐसा विचार रखते हैं कि इन ज्वालामुखियों के विस्फोटो से अधिक स्थायी मौसमी परिवर्तन हो सकते है। हां, विस्फोट थोड़े समय रहने वाले चक्रों के कारण जरूर बन सकते हैं।

पृथ्वी की कक्षा की उत्केन्द्रता के कारण सूर्य से प्राप्त होने वाले विकिरणों की मात्रा में काफी फर्क पड़ जाता है। परन्तु विकिरण की वार्षिक प्राप्ति में खास अन्तर नही होता है। इसलिए सम्पूर्ण जगत् की जलवायु मे बड़े परिवर्तनो का कारण यह नही हो सकता। फिर भी इस घटना का कुछ न कुछ प्रभाव जलवायु पर पड़ता ही है। आजकल जनवरी मास में पृथ्वी सूर्य के ज्यादा से ज्यादा निकट घूर्णन करती है,

और जुलाई मास में ज्यादा से ज्यादा दूर। इससे उत्तरी गोलार्द्ध में मौसम के परिवर्तन अपेक्षाकृत हलके होते है और दक्षिणी गोलार्द्ध मे तीव्र। दस हजार वर्षों मे ये अवस्थाएं परिवर्तित हो जाएगी जिससे कि इसके विपरीत क्रियाएँ होंगी और उत्तरी गोलार्द्ध मे ग्रीष्मकाल अधिक गर्म और शीतकाल अधिक ठण्डे होंगे। फिर २१ हजार वर्ष में पुन. जनवरी मास मे ही पृथ्वी सूर्य के अधिक समीप होगी।

समुद्री धाराओं का सिद्धान्त जिसकी पुष्टि समुद्र की लगभग ५ मील गहराई में उपस्थित सचयों के अध्ययन से हुई है, हिमनदो के आगे बढ़ने तथा पीछे हटने की व्याख्या करता है (जिन्हे हिमकाल कहा जाता है) जिसका कारण उत्तर ध्रुवीय महासागर और अन्ध महासागर के मध्य पानी की अदलाबदली है। सिद्धान्त के अनुसार धाराओं के स्वतन्त्र रूप से प्रवाह होने पर उत्तर ध्रुवीय महासागर जम नही पाता, क्योंकि अन्धमहासागर की गरम धाराएँ उसे गरम करती है। परन्तु चूंकि यह जमा हुआ नही होता, इसमे से अधिक जल वाष्पीकृत होता है, अधिक हिमपात होता है, और उत्तरी क्षेत्रों पर अधिक हिमनद बनते हैं। आखिरकार हिमनदों में इतना अधिक पानी एकत्र हो जाता है कि महासागर में पानी का तल उतर जाता है, जिससे महासागरों में धाराओं का बिना रोक-टोक प्रवाह बन्द हो जाता है और उत्तर ध्रुव महासागर जम जाता है। जल-वाष्पों के इस स्रोत के बन्द हो जाने से हिमपात कम होता है, और हिमनद धीरे-धीरे कम हो जाते हैं। अब महासागरो का तल फिर से ठीक हो जाता है, धाराओं का प्रवाह फिर जारी हो जाता है, जब तक कि फिर वही चक्र नही चलता। यदि समुद्र विज्ञान को जानने वालों ने ठीक प्रकार से इन सकेतों का अध्ययन किया है तो उत्तर ध्रुवीय महासागर पिछली बार ११ हजार वर्ष पूर्व जमा था, और आज विश्व फिर एक अन्य हिमकाल के आक्रमण की प्रतीक्षा मे है।

सूर्य हमारे सब प्रकार के मौसम और जलवायु का प्रमुख स्रोत है। इसलिए सूर्य का जलवायु के परिवर्तनो मे गहरा हाथ माना जाता है। इस सिद्धान्त के दोषो का सावधानी से पता किया गया है। सौर ताप की मात्रा के पिछले चालीस वर्षों में स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूशन ऑफ वाशिंगटन मे किये गये दैनिक अध्ययन से पृथ्वी पर पहुँचने वाली सौर ऊर्जा के विषय मे विशेष जानकारी नही मिल सकी है। किन्तु हाल में सकेत मिला है कि सूर्य मे होने वाले परिवर्तनो से उसके समूचे ताप पर कोई प्रभाव नही पड़ता। इससे जलवायु के बनने में सूर्य की भूमिका का प्रश्न फिर से उठ खडा हुआ है। सूर्य मे धब्बे (सनस्पाट) पैदा होने के समय अल्ट्रावायलेट तथा कणिकामय (कार्पस्कुलर) ऊर्जा का विस्फोट सूर्य की कुल ऊर्जा का केवल कुछ प्रतिशत ही होता है, निश्चित रूप से कहना कठिन है कि वह कितना होता है। कारण यह है कि यह सम्पूर्ण ऊर्जा वायुमण्डल मे पृथ्वी के बहुत ऊपर ही रुक जाती है, जहाँ कि यह दीर्घ-परास (लांग रेंज) रेडियो सचार मे बाधा डालने तथा आरोरा प्रकाश का कारण बनती है। १९५२ ई० के फरवरी मास में बर्लिन से छोड़े गए गुब्बारों द्वारा भेजी सूचनाओं से पहले-पहल यह स्पष्ट रूप से विदित हुआ कि कणिकाएँ भी उच्च-

स्तरीय वायु को गरम करने का कार्य करती है। सूर्य सम्बन्धी तीव्र उथल-पुथल के दौरान नव्वे हजार से एक लाख फुट की ऊँचाई पर वायु एकदम शून्य अंश फारेनहाइट से ७६ अंश कम (—७६) के तापक्रम से शून्य अंश फारेनहाइट के तापक्रम पर आ गयी। इतनी ऊँचाई पर वायु का यह तापक्रम अधिकतम था। उस के शीघ्र ही बाद ध्रुवीय क्षेत्रों के ऊपर की वायु के सचार मे एक विस्मयकारी परिवर्तन हुआ। अन्धमहासागर पर प्रचण्ड तूफान आए, और इतना हिमपात हुआ जितना पहले कभी नहीं हुआ था। ११ फरवरी, १९५८ को उपग्रह एक्सप्लोरर प्रथम ने इस बात की सूचना दी कि कास्मिक किरणों की गतिविधि मे तेजी से वृद्धि हुई है, जो संभवत. सूर्य के प्रचण्ड तूफान के फलस्वरूप थी। उसके तीन दिन पश्चात् बेहद ठण्ड पड़ी और सयुक्तराज्य अमेरिका के पूर्वीय अर्द्ध-भाग पर भारी हिमपात हुआ। कुछ प्रमुख मौसम वैज्ञानिको ने इससे यह परिणाम निकाला कि घटनाओ का यह क्रम केवल दैवयोग मात्र ही नही था। इस तरह की घटनाओ से किसी भी सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए यद्यपि अभी और अन्वेषण और निरीक्षण करना शेष है, तथापि इन जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों का मुख्य कारण सूर्य ही समझा जा सकता है।

इसी प्रकार कार्बन-डाइ-ऑक्साइड सिद्धान्त आजकल बहुत महत्व का हो गया है, और केवल समय एवं अन्वेषण ही इसकी सत्यता का निर्णय कर सकता है। जब वृक्षों को काट गिराया जाता है, तब नये शहर बसाने के लिए देहाती भूमि को एकसा किया जाता है तथा जब कारखानो और तेल-शोधक सयन्त्रो को खुले मैदानों मे स्थापित किया जाता है तब स्पष्टत. पेड़-पौधों द्वारा ग्रहण की जाने वाली कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा में कमी हो जाती है तथा ईंधन के प्रयोग से इसकी मात्रा और भी बढ़ जाती है। कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा में यह वार्षिक वृद्धि अब छ अरब टन हो गयी है। गणनानुसार यह मात्रा एक शताब्दी में पृथ्वी के तापक्रम में १.५ अंश वृद्धि के लिए पर्याप्त है। औद्योगीकरण की यदि वर्तमान रफ्तार जारी रहे तो इस सिद्धान्त द्वारा इस बात का सुझाव मिलता है कि २०८० के वर्ष तक पृथ्वी का तापक्रम चार अंश बढ़ जाएगा।

सरलतम शब्दों में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड इस परिवर्तन को उसी प्रकार से करती है जैसे कि एक पौधा-घर (ग्रीन हाऊस) करता है। पौधा घर के शीशों की भांति सम्पूर्ण वायुमण्डल मे उपस्थित कार्बन-डाइ-ऑक्साइड पृथ्वी पर आने वाली सौर ऊर्जा के लिए एकतरफा रास्ता बनाती है। यह गैस सूर्य जैसे चमकीले एवं तप्त पिण्ड से आने वाले विकिरण को सरलता एवं सम्पूर्ण रूप से गुजर जाने देती है, परन्तु पृथ्वी जैसे शीतल पिण्ड से निकलने वाली ऊर्जा को पूर्णतया बाहर नहीं जाने देती, और इस प्रकार पृथ्वी से ताप निकलने मे बाधा डालती है। यह कहना कठिन है कि कार्बन-डाइ-ऑक्साइड कितनी प्रभावशाली है, परन्तु वायुमण्डल में इसकी मात्रा मौसम सम्बन्धी परिवर्तन लाती प्रतीत होती है।

यद्यपि यह कहना कठिन है कि कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, धूलिकण, सूर्य, या कोई अन्य अज्ञात कारक, इनमे कौन मौसम का मुख्य नियन्त्रक है, तथापि इसमें कोई सन्देह नही कि इन जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों मे स्वय मनुष्य का बड़ा हाथ है। जिस भूमि की घास बुरी तरह चर ली गयी हो उसमे घास वाली भूमि की अपेक्षा कम आर्द्रता होती है। इसी प्रकार जगल काट लेने से भूमि मे नमी कम हो जाती है और सड़को वाली भूमि पर तो आर्द्रता बिलकुल होती ही नही है। हल चलाने से भूमि ऐसी हो जाती है कि उसकी बारीक मिट्टी वायु के झोंको से उड़ायी तथा वर्षा से बहायी जा सकती है अन्यथा उस मिट्टी मे कटाव निरोधक पौधे उग सकते है। जब सूखा पड़ता है तो लापरवाही से जोती गयी भूमि धीरे-धीरे रेगिस्तान मे बदल जाती है। यही घटना मध्य पश्चिमी अमेरिका मे पिछले कुछ वर्षों मे घटती रही है। कनाडा और वेनजुएला मे भी यही कुछ हो रहा है। दक्षिणी अफ्रीका के कुछ क्षेत्र इतने खराब हो चुके हैं कि उन्हे ठीक नही किया जा सकता। और चीन तथा भूमध्यसागर के दक्षिणी व पूर्वी तटो के कुछ भागो को इसी प्रकार की हानि हजारो वर्ष पूर्व पहुच चुकी है।

प्राचीन बैबीलोन, जिसमे कभी भव्य राजकीय भवन, बहुमूल्य कला सग्रह तथा सुप्रसिद्ध हैंगिग गार्डन थे, पहले उपजाऊ क्षेत्र था, और अपनी उन्नति के शिखर के समय ससार भर का धान्यागार कहलाता था। इसके आस-पास ही कही प्रसिद्ध 'स्वर्ग का उद्यान' (गार्डन आफ ईडन) था। भूमि के आरपार देवदार के जगल फैले हुए थे। निस्सन्देह वह सम्पूर्ण क्षेत्र समृद्ध, हरा-भरा तथा उपजाऊ था। लेबनान मे उन प्रसिद्ध जगलो के अब कुछ अवशेष मिलते हैं। ईरान की खाड़ी से आने वाली हवाएँ तथा अन्य हवाएँ अब केवल शुष्क रेत को ही इधर-उधर उड़ाती हैं। इन सब का उत्तरदायित्व मनुष्य द्वारा वृक्षों की अन्धाधुध कटाई तथा भूमि पर पशुओं की अधिक चराई पर है। यह देखना है कि क्या कभी इस भूमि को फिर से उपजाऊ बनाने के यत्न किए जायेंगे। यदि पर्याप्त समय तक पर्याप्त यत्न तथा धन का व्यय किया जाय तो ऐसा होना निश्चित ही है।

तेरहवां अध्याय

दूषित वायु

एक औसत व्यक्ति एक दिन में पौने तीन पौण्ड भोजन खाता है, साढे चार पौण्ड पानी पीता है। परन्तु वायु की मात्रा जो कि वह श्वास द्वारा अपने अन्दर लेता है, इससे कही अधिक होती है, और वह है बीस पौण्ड। सदिग्ध भोजन को मनुष्य खाने से इंकार कर सकता है। और इसी प्रकार सन्देह वाले जल को भी पीने से मना कर सकता है, परन्तु जहाँ तक वायु का सबंध है, उसे सास लेना ही है चाहे वायु कैसी ही क्यों न हो, दूषित ही हो और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो या जीवन के लिए खतरनाक ही क्यो न हो। दुर्भाग्यवश आधुनिक औद्योगीकृत समाज ने अमेरिका की लगभग आधी जनता को और इसी प्रकार अन्य देशो की जनता के बडे भाग को ऐसे वातावरण मे श्वास लेने के लिए बाध्य कर दिया है, जो कुछ सीमा तक विभिन्न प्रकार के कारखानो, प्रोसेसिंग संयन्त्रों, ताप उत्पादक भट्टियों तथा भस्मित्रो (इन्सिनरेटरो) के धुओ, धूलिकणो, रासायनिक धुओं, एव मोटर गाड़ियों के धुओ से दूषित कर दिया गया है। इस प्रकार वायु संदूषण एक सामाजिक बुराई हो गई है, जिसके वडे व्यापक दुष्परिणाम है, परन्तु यह सदूषण सभवतः एक और वडे महाविनाश का प्रारम्भ ही है। परमाणु तथा नाभिक (न्यूक्लीयर) अस्त्रो से उत्पन्न वायुवाहित दूषित पदार्थ, पृथ्वी को एक घन्टे के अल्प समय मे ही घातक बादलो से आच्छादित कर सकते है। इसी प्रकार भयानक और पहले प्रयुक्त न की गई युद्ध गैसे तथा हानिकारक कीटाणुओ के भडार रोग एव मृत्यु के जनक हो सकते हैं। अब यह अनुभव करने और समझने का वक्त आ गया है कि हम सब एक ही वायु के महासागर मे रहते है और उसी से ही अपना भरण-पोषण करते हैं। यदि हम वायु-दूषण की सीमा का उल्लघन कर जाते है तो इसका परिणाम सम्पूर्ण नाश ही होगा।

सामान्य रासायनिक घटकों से युक्त शुद्ध वायु, तो अब केवल पर्वतों की चोटियों या महासागर के मध्य मे ही मिल सकती है। वहा पर भी इस परमाणु युग का प्रारम्भ हो जाने के बाद से उस तरह का वायुमण्डल नही मिलता जिसमे मनुष्य ने अनेक पीढियों से अनुकूलन किया है। यह बात निश्चित है कि जिस वायु को सामान्य वायु समझा जाता था, वह कुछ न कुछ अंश में दूषित कर दी गयी है और भविष्य मे भी कभी भी वह शुद्ध रूप में प्राप्त नहीं हो सकेगी। जैसा कि

घाटी पर एक छत सी छा गयी थी। इस प्रकार से घिरी हुई सल्फर डाइऑक्साइड ने वायु की आक्सीजन के साथ क्रिया करके सल्फर-ट्राइऑक्साइड गैस बनायी। यह सल्फर-ट्राइ-ऑक्साइड वायु में उपस्थित आर्द्रता के साथ संयोग करके सल्फ्यूरिक अम्ल मे परिवर्तित हो गयी। यह सल्फ्यूरिक अम्ल कोहरे की कणिकाओं पर तथा धुएं और धूलिकणों पर जमा हो गया। इसने वहां के व्यक्तियो के फेफड़ो को प्रभावित किया जिसके कारण व्यक्तियों को वमन भी हुआ और बहुत से व्यक्तियो की हृदय-गति रुक जाने से मृत्यु हो गयी।

लन्दन शहर की वायु लम्बे समय से दूषित रही है। ईस्वी १६५२ मे इस शहर की वायु खास तौर पर विषाक्त हो गयी। लगभग १६१३ ईस्वी में राजा एडवर्ड प्रथम ने यह घोषणा करना आवश्यक समझा कि कोई व्यक्ति लन्दन मे सी कोल (जो उस समय पत्थर के कोयले का नाम था) नही जला सकता। एक शिल्पी को इस कानून के अन्तर्गत बन्दी ही नही बनाया गया बल्कि उस पर मुकदमा चलाकर उसे फांसी भी दी गयी। इसके बावजूद यह आज्ञा निरन्तर शिथिल होती गयी और महारानी एलिजाबेथ प्रथम के समय में केवल संसद् के अधिवेशन के दिनो मे ही इसका पालन किया जाता था, यद्यपि महारानी इस कोयले के धुएं और दुर्गन्ध से बहुत परेशान थी। इसके पश्चात् १६६१ ईस्वी मे लेखक और सरकारी अफसर जान इवेलिन ने इस बात का बहुत विरोध किया। उनके कथनानुसार खासी, जुकाम, क्षय इत्यादि फुफ्फुस की बीमारिया अकेले शहर में इतनी है जितनी कि संभवत शेष सारे ससार मे मिलाकर नही थी। इसके बावजूद कोहरे अनेक बार लन्दन शहर में भिन्न-भिन्न वर्षों मे छाये। इतना होने पर भी लन्दन शहर १६५२ के "महान् कोहरे" के लिए तैयार नही था।

४ दिसम्बर, वृहस्पतिवार, मध्याह्नोत्तर के समय से एक कोहरा प्रारम्भ हुआ, जो इंग्लैण्ड मे छा जाने वाले अन्य कोहरों की तरह था। अगले दिन शुक्रवार की प्रातः तक कोई भी व्यक्ति कठिनाई से अपने पैर ही देख पाता था। इस अन्धेरे मे सड़क के किनारे टटोलकर चलते हुए पास से गुजरने वाले व्यक्तियो के चेहरे कठिनाई से ही पहिचाने जाते थे और कभी-कभी तो लोग आपस में टकरा भी जाते थे। यातायात बहुत धीरे-धीरे हो गया था। गाड़ियों के ड्राइवरो को सकेत देने के लिए आवाज लगानी पड़ती थी। जैसे-जैसे दिन बीतता गया और घरो तथा कारखानों में जलाये जा रहे सत्तर हजार टन कोयले से बना धुआं वायुमण्डल में मिलता गया, कोहरा गाढ़ा होता गया और उसका रंग मैले सफेद रंग से भूरे रग में और फिर काले रग मे परिवर्तित हो गया। प्रत्येक व्यक्ति ने खांसना प्रारम्भ कर दिया। मौसम की भविष्यवाणी करने वाले कोई भी सूचना देने मे असमर्थ थे। उसका कारण यह था कि न तो कोई वायु थी और न ही हवा चलने का कोई सकेत था। अधिक ऊपर की वायु भी ठण्डी न थी, अपितु उस कोहरे की तह से कुछ गर्म ही थी, जो दम घुटने का कारण बना

हुआ था। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि लन्दन की अवस्था ठीक उसी प्रकार की थी जैसी कि पूर्व-वर्णित म्यूस घाटी तथा डोनोला की।

शनिवार के दिन बहुत से व्यक्तियो की अवस्था सकटमय हो गई। ऐसे व्यक्ति जिन पर खासी, जुकाम, दमा इत्यादि श्वास-प्रणाली के रोगो का प्रभाव शीघ्र हो जाता था, मुश्किल से सांस ले पा रहे थे। उनके फेफड़ो मे जलन थी, हृदय की गति तेज़ थी। चिकित्सक यातायात की सुविधा न होने के कारण अपने रोगियो को देखने नही जा सकते थे और टेलीफोन पर ही उनको सुभाव दे सकते थे कि वे यदि सभव हो तो आक्सीजन टैन्ट का प्रयोग करें। रविवार की प्रात तक ग्यारह इंच तक भी देख सकना कठिन हो गया। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति अपने चेहरे के आगे थामे हाथ को भी नही देख पाता था। गोदियों के आसपास के लोग चलते समय रास्ता न देख सकने के कारण समुद्र मे ही गिर जाते थे और उनमें से कई डूब भी गये। अनेक व्यक्ति इस प्रकार रास्ता भूल गये। इस परेशानी मे वे भूमि पर वही के वहीं बैठ गये तथा ठण्ड के कारण मर गये।

सोमवार के दिन यह गहरा कोहरा (स्माग) कुछ उठा और फिर बैठ गया। और इसके पश्चात् धीरे-धीरे समाप्त हो गया। लन्दन निवासियों की इस दुर्घटना मे बहुत हानि हुई। यद्यपि लन्दन मे उस समय सामान्य मृत्यु दर दो हजार व्यक्ति प्रति सप्ताह थी, तथापि उस स्माग वाले सप्ताह मे चार हजार सात सौ तीन व्यक्तियों की मृत्यु हुई और उसके अगले सप्ताह तीन हजार एक सौ अट्ठासी व्यक्तियों की। मृत्यु सख्या मे यह वृद्धि १८८६ ईस्वी में लन्दन मे फैले हैजे की साप्ताहिक मृत्यु सख्या से भी अधिक थी। सम्पूर्ण रूप से चिकित्सा विभाग के सांख्यिकीविदों की गणनानुसार "स्माग" कम से कम चार हजार व्यक्तियो की मृत्यु के लिए उत्तरदायी था। इसके अतिरिक्त नगर मे धूलि तथा कालिख की तह प्रत्येक वस्तु पर जमी हुई दिखाई देती थी। फर्नीचर तथा दीवारों पर काली लेसदार वस्तु की तह जम गई थी। पर्दे तथा अन्य बाहर पडे हुए कपडे सफाई करते समय टुकडे-टुकड़े हो जाते थे।

लन्दन के इस "स्माग" का प्रभाव बच्चों, बूढों तथा उन व्यक्तियो पर विशेष रूप से पड़ा जोकि दीर्घकाल से श्वास-प्रणाली के रोगो या हृदय-रोगो से पीडित थे। मृतको मे से ६० प्रतिशत पैंतालीस वर्ष की आयु से अधिक के थे तथा सत्तर प्रतिशत पैंसठ से भी अधिक के। दूषित वायु हमारे कपडे लत्ते, हमारी त्वचा एव हमारे फेफड़ो पर प्रभाव डालती है। इसके द्वारा धातुएँ सक्षारित हो जाती है। रग-रोगन पपडी बनकर उतरने लगते है और पेड-पौधे बढ नही पाते तथा काले हो जाते है। यह स्माग वायुमण्डल को स्वच्छ व शुद्ध करने वाले सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी पर पहुंचने से रोकता है। इससे रोगाणु बढ़ते है और यह हमारे शरीर की प्रतिरोध शक्ति को कम कर देता है। सक्षेप मे वायु का सदूषित होना हमारी जीवन शक्ति को विभिन्न प्रकार से कम करता है।

यद्यपि सदूषित करने वाली वस्तुओं की उपस्थित मात्रा कुछ ही उदाहरणो मे

पान न करने वाले एक किसान की अपेक्षा फुफ्फुस कन्सर हो जाने की संभावना एक सौ बीस गुना अधिक होती है।

इस विनाशकारी वायुमण्डल का प्रभाव फार्म पर रहने वाले जानवरों पर मनुष्य से भी अधिक होता है। ये जीव-जन्तु केवल दूषित वायु में श्वसन ही नही करते, अपितु उससे संदूषित किये गये घास-पात को भी खाते हैं। जबकि आठ घन्टे की अवधि में वायु के प्रति दस लाख आयतनो में मनुष्य के लिए अहानिकारक फ्लोराइड की मात्रा की सीमा तीन भाग तक है वहा पशुओ पर इसका विषैला प्रभाव एक अरब भाग वायु में कुछ भाग फ्लोराइड होने पर ही हो जाता है, क्योकि पशुओं के चारे पर भी इन विषैली वस्तुओं की पर्याप्त मात्रा जम जाती है। जानवरो पर विषैले प्रभाव के उदाहरण प्राय ईंट के भट्टो के समीप तथा एल्यूमीनियम और फास्फेट उर्वरको के कारखानो एव इस्पात के कारखानो के आस-पास अधिक दृष्टिगोचर होते है।

वायु के सदूषित हो जाने से आर्थिक हानि भी अपरिमित होती है, यद्यपि निश्चित तौर पर यह बताना कि केवल इस कारण से कितनी हानि हुई है, असम्भव है, क्योकि ऐसी हानियों को अन्य प्रकार की हानियो से पृथक् नही किया जा सकता। एक दशक की बात है कि अमेरिकी भूगर्भ सर्वेक्षण से विदित हुआ था कि अकेले धुए से ही विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा भवनो को हुई हानि आधा अरब डालर वार्षिक तक पहुच गई थी। स्माग, धुए आदि के कारण एयरलाइन्स कम्पनियो को अपनी उडान रद्द कर देने की वजह से ही हर मास हजारो डालर की हानि हो जाती है। स्माग की वजह से ठीक प्रकार से दिखाई न दे सकने के कारण, मोटर गाडियों की अनेक दुर्घटनाए होती है। लोहे पर जग लगने की क्रिया भी साधारण नगरो की अपेक्षा औद्योगीकृत शहरो मे तीन गुना अधिक होनी है। इसके अतिरिक्त अन्य धातुओ की बनी वस्तुए भी देहात की अपेक्षा ऐसे शहरों मे अधिक सक्षारित होती है। लकडी, रूई तथा चमड़ा और उन वस्तुओ से बने अन्य समान भी सदूषित वायु मे शीघ्र ही खराब हो जाते हैं। इसका कारण वायुमण्डल मे उपस्थित अम्लीय धुआं होता है। इस प्रकार से सदूषित वायुमण्डल के अम्लीय घटक बालू पत्थर, चूने के पत्थर, और सीमेण्ट इत्यादि पर आक्रमण करते है। अन्त मे ये पत्थर क्षारित हो जाते है और उनकी पपडिया उतरने लगती हैं। इस कारण १९३० ईस्वी के अनुमानों के अनुसार इग्लैण्ड मे २५ लाख पौण्ड प्रति वर्ष की हानि केवल भवन सम्पत्ति मे ही होती है। अन्त मे यह जान लेना भी आवश्यक है कि बादल बनाने तथा वर्षा आरम्भ करने की क्रिया मे सदूषित वायु और शुद्ध हवा के जरिये बहुत फर्क पड़ सकता है। फिर भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मौसम सम्बन्धी प्रक्रियाओं पर इसका क्या प्रभाव होगा।

यद्यपि आज हमारा बहुत-सा समय तथा प्रयत्न वायु को सदूषण करने वाले पदार्थों, जिनमें धुआ भी शामिल है, को हटाने में लग रहा है, तथापि यह अकल्पनीय नही है कि कोई ऐसा दिन भी आ सकता है जबकि धुआं हमारे लिये एक वरदान सिद्ध हो। उस समय नगरों के ऊपर वायुमण्डल मे स्वेच्छा से धुए के घने बादल बनाकर

फैलाये जायेंगे। न्यूक्लीयर आक्रमण के समय धुआं सम्भावित हानि को कुछ रोक सकेगा। यद्यपि ऐसे काले दिन का विचार करते ही दिल कांप उठता है फिर भी सत्य यही है कि ऐसा दिन सम्भव है। यदि वायुमण्डल स्वच्छ हो तो न्यूक्लीयर अथवा परमाणु विस्फोट से घातक तीव्रता के साथ आने वाला तापीय विकिरण धमाके के क्षेत्र से परे पहुंच जाता है। परन्तु यह विकिरण अपारदर्शी पदार्थों में से पार नही जा सकता है। इस प्रकार गहरा धुआं विस्फोट के तापीय विकिरण द्वारा उत्पन्न होने वाली आग को सीमित कर देगा। परन्तु यह ध्यान रहे कि यह धुआ किसी भी तरह से विस्फोट या रेडियो एक्टिवता से हमारी रक्षा नहीं कर सकेगा। नगरों पर थर्मो-न्यूक्लीयर बमो के द्वारा किये जाने वाले आक्रमण से घातक आघात पहुचेगा। विस्फोट और आग के पश्चात् नगर इस्पात के मुड़े-तुड़े टुकड़ो और चूने-गारे व मिट्टी के ढेर में बदल जायेगा, जैसे कि वह गत्ते का बना हुआ था। क्षणों में ही भरपूर आक्रमण से हजारो लाखो व्यक्तियों की मृत्यु हो सकती है। यह विपत्ति और कष्ट केवल उन नगरो तक ही सीमित नहीं होगे, जिन्हें लक्ष्य बनाया गया होगा। बल्कि दूर-दूर तक इसका प्रभाव होगा। ऐसे विस्फोट से रेडियो एक्टिव धूलि हवाओं द्वारा सैंकड़ों मीलों तक पहुंच जायेगी। यह अत्युक्ति नही है कि रेडियो एक्टिव विष संचार द्वारा होने वाले महाविनाश का भय सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है। एनीवीटोक जोहानीजबर्ग से बहुत दूर है और इसी प्रकार साइबेरिया और शिकोगा भी एक दूसरे से बहुत दूर हैं; परन्तु एक स्थान पर वायवीय गड़बड़ का प्रभाव हवाओं के द्वारा दूसरे स्थानो पर भी अन्ततः पडता है।

आजकल के न्यूक्लीयर बमों के परीक्षण ही वायुवाहित कृत्रिम रेडियो एक्टिवता के प्रमुख स्रोत हैं। व्यापक पूर्वोपायों को देखते हुए पता चलता है कि यदि न्यूक्लीयर युद्ध छिड़ जाय तो कितना सर्वव्यापक विनाश इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर होगा। एक महान् थर्मोन्यूक्लीयर विस्फोट प्रथम मार्च १९५४ ईस्वी को प्रातः ६ बज कर १२ मिनट पर प्रशान्त महासागर में किया गया था। इसने एक टापू का तहस-नहस कर दिया एव साथ ही साथ उसने एक वैज्ञानिक संकल्पना को भी खत्म कर दिया। पहले लोगों का विचार था कि रेडियो एक्टिविटी का खतरा न्यूक्लीयर विस्फोट स्थल के पास तक ही सीमित रहता है। परन्तु इसके पश्चात् पता चला कि रेडियोएक्टिव धूलि की भयानक मात्राएँ हजारों वर्गमील के क्षेत्र में फैल जाती हैं। उस सम्पूर्ण क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों पर इसका हानिकारक प्रभाव हुआ: "लकी ड्रैगन" नामक जापानी मछुआ-जहाज के मछुए, मौसम संबंधी अध्ययन करने वाले प्रेक्षक, बिकनी के आस-पास के टापुओं में रहने वाले आदिवासी तथा मार्शल टापू के निवासी सभी उसके शिकार हुए।

जापानी मछुवों को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि दूसरा ही सूर्य उदय हो रहा हो। वे इस विस्फोट को देखकर बहुत भयभीत हुए। इसके छः मिनट बाद, और इसी कारण विस्फोट से सत्तर मील की दूरी पर एक तीव्र गरज की आ...

लगभग दो घंटों में बहुत बारीक, सफेद हल्की-सी बर्फ की तरह की राख उस मछुआ-जहाज पर गिरने लगी। जहाजियों की आंखों पर पहले-पहल इसका प्रभाव हुआ और फिर त्वचा पर खुजली एवं जलन होने लगी। इससे पहले कि उन लोगों की कुछ चिकित्सा हो, "लकी ड्रैगन" तुरन्त जापान को चल दिया। वहां पहुंच कर एक मछुए की तो मृत्यु हो गई और शेष बाईस जहाजियों को चिकित्सालय में प्रविष्ट कराना पड़ा। ये सब विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो गये थे।

उक्त प्रकार से गिरने वाली धूलि में जिसने प्रशान्तमहासागर में लोगों को हानि पहुचाई, मिट्टी, धमाके के साथ उड़ कर गया जल, गर्मी से वाष्पीकृत बम के हिस्सो तथा वायवीय गैसों से बने यौगिक शामिल होते है। वायुवाहित इस धूलि का मलवा धीरे-धीरे सूक्ष्म कणों के रूप में पृथ्वी पर गिरता है, जबकि सबसे अधिक घातक सदूषण विस्फोट के पास होता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका, रूस तथा ब्रिटेन द्वारा पहले-पहल किये गए लगभग एक सौ न्यूक्लीयर बमो के विस्फोट से लगभग एक टन रेडियोएक्टिव धूलि वायुमण्डल में उड़ा दी गयी थी। यद्यपि यह मात्रा बहुत थोडी प्रतीत होती है, फिर भी यह सम्भवतः हमारी सबसे अधिक विषैली औद्योगिक गैस क्लोरीन के समान भार से एक अरब गुना अधिक घातक है। इस समय भी वायुमण्डल के स्ट्रैटोस्फियर में कम से कम चालीस पौण्ड रेडियोएक्टिव स्ट्रोंशियम उपस्थित है, जो कि सुपरबम परीक्षणों द्वारा वायुमण्डल में जा मिला है। यह स्ट्रोंशियम (स्टोंशियम ९०) सम्भवतः परमाणुओं के विघटन से उत्पन्न होने वाले सभी रेडियो एक्टिव पदार्थों से अधिक भयानक है। रासायनिक दृष्टि से कैलशियम के समान होने के कारण, वनस्पतियाँ कैलशियम के स्थान पर स्ट्रोंशियम को भी ग्रहण कर लेती हैं। और यह स्ट्रोंशियम जानवरों और मनुष्यों की हड्डियों में पहुच जाता है, क्योंकि ये वनस्पतियाँ उनके भोजन रूप मे प्रयुक्त होती हैं। हम सबमें इसकी इतनी मात्रा तो एकत्रित हो भी चुकी है कि उसकी उपस्थिति परीक्षण द्वारा सिद्ध की जा सकती है।

यदि वायुमण्डल में उपस्थित यह स्ट्रोंशियम सम्पूर्ण रूप मे पृथ्वी के निवासियों तक पहुंच जाये तो यह मात्रा कैन्सर और ल्यूकेमिया (अतिश्वेतरक्तता) आदि कष्ट-दायक रोगों के द्वारा हम सबको धीरे-धीरे मारने के लिए बहुत काफी होगी। यह स्ट्रोंशियम तथा अन्य रेडियोएक्टिव द्रव्य वर्तमान सान्द्रता मे वास्तव मे धीरे-धीरे सारे संसार मे ही फैल जायेंगे, जहाकि इनका प्रभाव आकड़ो द्वारा सम्भवतः नही पहचाना जा सकेगा। इतना होते हुए भी बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें इस बात में सन्देह है कि रेडियो एक्टिविटी अस्थि कैन्सर, ल्यूकेमिया तथा ऐसे ही अन्य रोगो के कारण बन सकती है। आनुवंशिकी विशेषज्ञ इस बात मे विश्वास रखते है कि इस रेडियो एक्टिविटी की वजह से उत्परिवर्तन मे वृद्धि अनिवार्य है, कोमल कोशिका की वृद्धि तथा पुन-र्जनन की प्रक्रिया में परिवर्तन होगा, जिसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला शिशु माता-पिता की पूर्ण प्रतिकृति नही होगा जबकि अधिकाश उत्परिवर्तन मामूली ही होते है जिनके

परिणामस्वरूप मनुष्यों में रोगों की मुकावला करने की शक्ति क्षीण हो जाती है, और आयु भी कम हो जाती है, परन्तु आगे आने वाली पीढ़ियो में तीव्र उत्परिवर्तन भी सम्भव है, जैसे कि शिशु के दो सिरो का होना, अन्यथा टेढे-मेढे शरीरो का बन जाना। किसी विशेष व्यक्ति पर इन विकिरणों का प्रभाव विभिन्न प्रकार के अन्य खतरो से कही कम होता है। परन्तु यह सत्य है कि यदि सम्पूर्ण ससार की जनसख्या के एक प्रतिशत के किसी अ श पर भी ये प्रभाव हो जायें, तो भी हजारो-लाखो व्यक्ति इससे पीडित होगे। जैसी गणना की गई है, कि कृत्रिम विधियों से उत्पन्न हुई रेडियो-एक्टिविटी ने ससार भर के मनुष्यों की आयु में केवल दो दिन की ही कमी की है। ऐसी स्थिति में यदि कुछ ऐसे लोग हों जिन पर रेडियो एक्टिविटी का कोई प्रभाव न पडे, तब दूसरी तरफ कुछ मनुष्यों की आयु कई वर्ष कम हो जायगी। तभी जाकर वह औसत कायम रह सकती है।

कुछ जीव जन्तुओ, वनस्पतियों और हमारे मानव शरीर के अगो में विशिष्ट रेडियोएक्टिवता वाले तत्त्व जमा हो सकने के गुण के कारण रेडियोएक्टिवता के सम्भावित खतरे का पता चल सकता है, जो संसार में पहले ही फैली हुई है। रेडियो-आयोडीन तथा स्ट्रोंशियम, जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, क्रमश थायराइड ग्रन्थियों और हड्डियो मे जमा हो जाते है। हमारी आँखे, ताम्र को, हमारे वृक्क रुथिनीयम को, हमारा यकृत चाँदी को और हमारी प्लीहा (तिल्ली) पोलोनियम को जमा कर सकती है। रेडियोएक्टिवता वाला कोबाल्ट कुछ प्रकार के घोघों द्वारा अत्यधिक मात्रा तक जमा किया जा सकता है। कई प्रकार के समुद्री प्राणी रेडियोएक्टिवता वाले वैनेडियम जमा करने में अत्यन्त निपुण है। चाय का पौधा साधारण मैंगनीज़ तत्त्व को आसानी से ग्रहण कर लेता है और सम्भवतं रेडियोएक्टिवता वाले मैंगनीज भी ग्रहण कर सकेगा, ऐसे अनेक उदाहरण और भी हो सकते है, जिनके अन्दर इन तत्त्वों को ग्रहण करने और जमा करने की बहुत शक्ति हो और जैसे-जैसे कि ससार में रेडियो एक्टिवता बढती जायेगी ऐसे सुग्राहकों की निरन्तर खोज करनी आवश्यक हो जायेगी।

यद्यपि हमारे ज्ञान मे बहुत-सी त्रुटियाँ है तथापि बहुत दृष्टियो से रेडियो एक्टिवता का रासायनिक संदूषण की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से अध्ययन किया गया है। परमाणविक विघटन के आविष्कार के लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व से ही प्राकृतिक रेडियो एक्टिवता, एक्स किरणों तथा कासमिक किरणों का अध्ययन किया जा रहा है। इस दिशा मे किये गये उच्च श्रेणी के अध्ययनो के फलस्वरूप वैज्ञानिक सम्भवतः इस योग्य हो सकेंगे कि परमाणविक शक्ति का विना विकिरण के भय के प्रयोग हो सके। परन्तु यह तभी हो सकता है जबकि विचारशील और अपने उत्तर-दायित्व को अनुभव करने वाले राजनीतिज्ञ युद्धजन्य रेडियो एक्टिवता के महाविध्वंस से ससार को मुक्त रख सकें।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय समझौते परमाणविक हथियारो पर प्रतिबन्ध लगा भी दें, तो भी अन्य घातक वायुवाहित विष, जैसे नर्व गैसें

तथा रोगाणु शेष रह ही जाते है। यद्यपि इन विषो के नियन्त्रण की दिशा में अभी तक कोई पग नही उठाया गया है, तो भी यह कहा जा सकता है कि यदि नियन्त्रण हुए भी तो इनको भी अमल मे लाना बहुत कठिन होगा। इस श्रेणी के विषों का पता लगाना कठिन है, और ये लघु औद्योगिक सस्थानो मे भी बनाए जा सकते हैं, शायद उन प्रयोगशालाओ में भी जिन्हे अनुसन्धानशाला का नाम दिया जाता है। जबकि न्यूक्लीयर हथियार कारखानों, भवनो तथा किसी भी क्षेत्र मे उपस्थित सम्पूर्ण सम्पत्ति को नष्ट कर सकते है, ये विचित्र प्रकार के विष बिना सम्पत्ति को हानि पहुचाये लोगो को या तो मार डालते हैं या उनको अक्षम बना देते है। मनोरासायनिक पदार्थ भी बनाये जा सकते है, जोकि लोगों के आचरण को ही बदल दें, और इस प्रकार किसी क्षेत्र की जनसख्या को अस्थाई रूप से पागल बना दें, जिसका लाभ शत्रु पूरा उठा सकता है क्योंकि मानव को जैसे भी हथियार उपलब्ध होते गये वह निर्भय होकर उनको काम मे लाने मे झिझकता नही है। ऐसी अवस्था मे यह कल्पना करना मूर्खता है कि मानव गैसों और रोगाणुओं को युद्ध में प्रयुक्त नहीं करेगा। सैनिक लोग इन नवीन हथियारो के प्रयोग की सम्भावना को कम महत्त्व नही देते।

इस प्रकार से मानव जिस मार्ग पर चल रहा है अवश्य ही वह उसे विध्वंस की ओर ले जा सकता है। वायवीय कैन्सर तथा व्यापक रोगों की उग्रता उसको तब तक भयभीत किये रहेगी जब तक कि वह अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को शान्तिपूर्ण तरीकों से सुलझाना सीख नही जाता। इसी प्रकार उस वायुमण्डल का सदूपण भी रोकना होगा, जो अब भी हमारी शक्ति को क्षीण कर रहा है, और हमारे जीवन के सुख को कम कर रहा है। जैसे हमने शुद्ध भोजन और पेय की आवश्यकता को समझ लिया है, उसी प्रकार से हमे स्वच्छ वायु की कीमत भी समझनी होगी। अपने नगरो मे गन्दे पानी की नालियो को हम अब ऊपर से खुला नही रहने देते, इसी प्रकार से वायु को विकृत करने वाली वस्तुओ को वायुमण्डल मे छोड़ा जाना भी असह्य बनाना होगा।

चौदहवां अध्याय

ऊपर का नया विश्व

लगभग पचास वर्ष पूर्व मनुष्य अपने पहले वायुयान में केवल कुछ फुट ही ऊपर उठने के योग्य था। अब वह पृथ्वी के चारों ओर अन्तरिक्ष कैप्सूल में बैठकर कक्षा मे चक्कर लगाता है और चन्द्रमा तक की यात्राओं की योजनाएँ बना रहा है। यद्यपि उसके ऊँचे सपनों ने अपने ऊपर के अज्ञात संसार के विषय मे ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा दी है, तथापि राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सैनिक आवश्यकता की यह मांग है कि मनुष्य खोज में निरन्तर प्रगति करता जाय और आगे आने वाले सभी आश्चर्यजनक परिवर्तनों का जमकर सामना करे।

अन्तरिक्ष यात्रा के इन दिनो में हमारे ऊपर के आकाश के विषय मे हमारे बहुत से विचार बदल चुके है। अब आकाश हमारे सिर पर केवल एक सुन्दर नीले रग का आच्छादन मात्र नही है, चन्द्रमा और तारे केवल इसलिए नही हैं कि ये आकाश को सुन्दर बनायें और उनमे कवि लोग प्रेरणाएँ प्राप्त करे। हम जानते है कि पृथ्वी इस ब्रह्माण्ड का केन्द्र नहीं है, परन्तु उन नौ ग्रहो में से एक है जो कि अन्तरिक्ष के विशाल अनन्त महासागरो में एक पिण्ड के चारों ओर चक्कर लगा रहे है। इस अन्तरिक्ष के महासागरों में उत्तर, पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा नाम की कोई वस्तु नहीं है, दिशाएं शीघ्र ही बदलती रहती हैं और गति का वेग इतना अधिक है कि विश्वास नही किया जा सकता। यात्रा का समय घटों के स्थान पर महीनो और सालों मे नापा जाता है।

अन्तरिक्ष में तथा कक्षा मे यात्राएँ इस बात की सूचक है कि मनुष्य पृथ्वी के इस वायुमण्डल के दूर परे यात्रा कर सकता है और कार्य भी सुगमता से कर सकता है। परन्तु फिर भी यह बात सत्य ही है कि मनुष्य अपनी इस सुरक्षित ढाल के बाहर वैसा ही है जैसा कि पानी के बाहर एक मछली। महासागरो के कुछ बड़े जानवरों को पृथ्वी के स्थलीय भाग पर रहना सीखने मे १० करोड वर्ष से अधिक लग गये थे। सम्भवतः अन्तरिक्ष में रहना सीखने के लिये भी मनुष्य को भी उतने ही समय की अपेक्षा रहती, यदि उसमें बुद्धि और तर्क शक्ति न होती जिसका जानवरों में अभाव होता है।

बहुत-सी समस्याएँ, जिनके बारे में मनुष्य समझता था कि उन्हे हल करने में कई शताब्दियां लगेंगी, बहुत ही आश्चर्यजनक ढंग से थोड़े ही समय मे हल कर

गई है। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं ने सम्मिलित रूप से यत्न करके ही अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए समुचित परिस्थितियों का निर्माण किया है। यद्यपि इस क्षेत्र में तेजी से प्रगति १९५७ ईस्वी में ही प्रारम्भ हुई जबकि संसार का पहला उपग्रह छोड़ा गया था, फिर भी उससे पहले भी पृथ्वी के वायुमण्डल में बहुत सी उड़ानें तथा परीक्षण किये गये थे, जिन्होंने हमें नये विशाल विश्व के बारे में महत्त्वपूर्ण और बहुमूल्य जानकारी दी।

पृथ्वी के वायुमण्डल से दूर मनुष्य अपनी रक्षा की विशेष व्यवस्था के बिना जीवित नहीं रह सकता। उसके जीने के लिये यह आवश्यक है कि वह श्वास द्वारा 'ऑक्सीजन" अपने शरीर में ग्रहण करे और "कार्बन-डाइ ऑक्साइड" का त्याग करे। यह प्रक्रिया तभी हो सकती है जब कि वायु का दाब इतना अधिक हो कि वह हमारे फुफ्फुस में ऑक्सीजन को भेज सके और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड तथा जल वाष्पों को बाहर निकाल सके। सात हजार फुट की ऊँचाई से कम ऊँचाई पर वायु इस प्रक्रिया के लिये पर्याप्त रूप से उपयुक्त होती है, परन्तु पहाड़ों की उच्च चोटियों पर मनुष्य ऑक्सीजन की कमी के कारण अपने को कुछ अस्वस्थ अनुभव करता है। दस हजार फुट की ऊँचाई पर यह ऑक्सीजन की कमी पुट्ठों में कुछ दुर्बलता उत्पन्न कर देती है, चेतना शक्ति को कुछ क्षीण कर देती है तथा मस्तिष्क में एक संक्षोभ उत्पन्न कर देती है। लगभग सोलह हजार फुट की ऊँचाई पर बिना सुरक्षा के कोई मनुष्य अपने मन को किसी भी कार्य को करने के लिये पूर्णतया अयोग्य पायेगा और उसको बार-बार बेहोशी के दौरे उठ सकते हैं—यद्यपि कुछ मानसिक शक्ति वाले पर्वतारोही अपने आपको इस प्रकार से प्रशिक्षित कर लेते हैं कि वे कुछ समय के लिए पच्चीस हजार फुट की ऊँचाई पर भी रह सकते हैं।

इस बिन्दु से परे केवल तीन मिनट में ही चेतना-शक्ति समाप्त हो जाती है और पचास हजार फुट की ऊँचाई पर तो केवल पन्द्रह सैकेन्ड में ही ऐसा सम्भव है। पृथ्वी से दस मील की ऊँचाई पर एक सुरक्षक कैप्सूल की आवश्यकता होती है, न केवल मस्तिष्क की रक्षा के लिये, अपितु इसलिये भी कि शरीर के अन्दर उपस्थित जल शरीर में ही रहे और वाष्प बन कर शरीर की कोशिकाओं को फाड़ता हुआ बाहर न निकल जाये। यदि जीवन की सामान्य क्रियाएँ अधिक समय तक भली प्रकार चलानी हों तो कैप्सूल में से जलवाष्प तथा अनुपयुक्त वस्तुएँ निरन्तर निकलती रहनी चाहियें। ६३ हजार फुट की ऊँचाई पर मनुष्य तुरन्त मर जाता है, उसके रक्त में उपस्थित जल खौल जायेगा और बुलबुले बन कर बाहर निकलने लगेगा।

वायुमण्डल के अन्दर बहुत ऊँचाई पर विभिन्न प्रकार के अन्य खतरे प्रारम्भ हो जाते हैं। अमुरक्षित यान चालक को किसी अन्य वस्तु से सम्बन्ध होने का संवेद नहीं रहता है। सूर्य का प्रकाश इतना तेज होता है कि यदि वह प्रकाश किसी वस्तु से परावर्तित होकर आये तो वह भी किसी व्यक्ति को अन्धा कर देगा। वस्तुओं की छाया काली होती है।

सत्तर हजार फुट की ऊँचाई पर वायुमण्डल में इतनी कम ऑक्सीजन होती है कि किसी भी ज्वलनशील वस्तु का ज्वलन नहीं हो सकता। इसलिए राकेट्स को अपने लिए ऑक्सीजन साथ ले जानी पड़ती है। उस ऊँचाई से परे वायु मे ओज़ोन की मात्रा अत्यधिक होती है और उसको यान के केबिन को सील करके परे रखना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त कास्मिक किरणें एक अन्य भय है। भारी से भारी इस्पात को भी ये पार कर जाती हैं क्योंकि उनके परमाणु भारी और आश्चर्यजनक होते हैं। उल्काओं के नन्हें टुकड़े उन ऊँचाइयों पर आश्चर्यजनक रूप में शक्तिशाली होते हैं, यद्यपि इनमें से अधिकतर इतने छोटे होते हैं कि ये अंतरिक्ष कैप्सूल की दीवारों को पार नहीं कर सकते। बड़े टुकड़े विरले ही होते हैं।

पृथ्वी के वायुमण्डल के अन्दर ऊँची उड़ानें कुछ ऐसी समस्याएं उत्पन्न करती हैं, जो वाह्य अन्तरिक्ष में उपस्थित नहीं होती। उस ऊँचाई पर उडान करने वाले यान का डिजाइन सावधानी से तैयार करने की आवश्यकता है, जिससे उस ऊँचाई पर चारों ओर की वायु की पतली तह पर नियन्त्रण रखा जा सके। यह प्रत्येक यान की उडान में बनती है और उसके साथ ही खिची चली आती है। वायु की यह पतली तह उच्च वेग पर तरंगायित होती या झटका खाती है और सारे यान को हिला देती है। और इस प्रकार गम्भीर कष्टदायक समस्याएँ उत्पन्न कर सकती है। वायुयान के पंखों के पृष्ठ में छिद्र करके अथवा वायु का शोषण करने वाले पदार्थों को प्रयोग मे लाकर परीक्षण किये गए हैं, परन्तु पृथ्वी से १२० मील ऊपर जहाँकि मनुष्य ने पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाए हैं वायु इतनी घनी नहीं होती कि उड़ान पर उक्त प्रभाव डाल सके।

तीन हजार पाँच सौ मील प्रति घन्टे के वेग से चलने वाला राकेट अपने चारों ओर की वायु को दो हजार अंश फारेनहाइट तक गर्म कर देता है। कुछ कम वेग होने पर भी इतनी गर्मी उत्पन्न हो जाती है, जो रबड़ को पिघलाने के लिए, तेल और पैट्रोल आदि को उबालने के लिए, और धातुओं को मक्खन की तरह नरम करने के लिए पर्याप्त होती है, यह जीते-जागते आदमी को भी भूनने के लिए काफी है।

यान चालक, जिसे कभी शीत से सुरक्षित रखना पड़ता था, अब ताप से उसकी रक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि यान के सामने की वायु एकत्रित होकर गरम भी हो जाती है और यान के पंखों के साथ घर्षण द्वारा आश्चर्यजनक ताप उत्पन्न करती है। आज उच्च उड़ान करने वाले यानों तथा अन्तरिक्ष कैप्सूलों के केबिन विशेष रूप से नियन्त्रित किये जाते है। यहां तक कि अन्तरिक्ष कैप्सूलों मे यात्रा करने वाले मनुष्यों के कपड़े भी वातानुकूलित रहते हैं जिससे ताप असह्य न हो जाय।

अत्यधिक ऊँचाई और उच्च वेग पर यात्रा करने वाले यान चालकों को यान छोड़ने के लिए बाध्य होने पर गम्भीर खतरों से सामना करना पड़ सकता उसको एक बन्दूक से निकलने वाली गोली की तरह जोर से बाहर निकालना इस क्रिया में भी उसे घातक तेज वायु और पास से गुजरते हुए वायुयान से

होगा। पहला व्यक्ति, जो इस भयानक परीक्षण में से बचकर निकला वह १९५५ ईस्वी के प्रारम्भ में अमेरिका का एक परीक्षणार्थ भेजा गया यान चालक था। उसका भाग्य ने साथ दिया था, परन्तु चिकित्सालय में दर्जनों चिकित्सकों के होते हुए भी, ठीक होने में आधा वर्ष लग गया। वेगमय वायु उसके जूते, जुराब, दस्ताने उसके शरीर से उड़ाकर ले गयी, यहाँ तक की उसकी अंगूठी भी अंगुली से उतर गयी। शरीर की परीक्षा करने से ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि वायु ने अपने तेज प्रहारों से उसे प्रताडित किया हो। यद्यपि उसको भयानक चोटें आयी थी उसको आराम आ गया, और उसके अनुभवो से उस सम्बन्ध मे आगे अध्ययन करना सम्भव हो गया। पृथ्वी के चारो ओर घूमते हुए कैप्सूल को पृथ्वी पर वापस लाने मे कई विशेष समस्याएं सामने आती है। जैसा कि हम उल्काओं के विषय मे देख चुके हैं। कोई भी वस्तु पृथ्वी के वायुमण्डल मे वापस लौटते हुए गुरुत्वाकर्षण द्वारा पृथ्वी की ओर भारी वायु में से निरन्तर बढ़ती हुई गति के कारण जलकर भस्म हो जायगी। कैप्सूल के इस वेग को कम करने के लिए विशिष्ट साधन, जिन्हें "रिट्रोराकेट्स" कहते हैं, यान के उतार के प्रारम्भ मे ही छोड़े जाते हैं। चालक ताप से "हीट शील्ड" द्वारा सुरक्षित किया जाता है। जब कैप्सूल नीचे उतरता है, तो "हीट शील्ड" का मुँह नीचे की ओर होता है। और जब वह "हीट शील्ड" वायु के भारी अणुओं के सम्पर्क मे आता है तो जल जाता है। इस युक्ति द्वारा शेष कैप्सूल बिना जले सुरक्षित रह जाता है। अपनी अन्तरिक्ष उड़ान के अन्तिम चरण में अमेरिकन अन्तरिक्ष उडाके जान्ह ग्लेन ने अपने कैबिन की खिड़की के पास से गुजरते हुए कुछ चमकीले पदार्थ के टुकड़े देखे, और कुछ समय के लिए यह विश्वास कर लिया कि 'हीट शील्ड' पृथक् हो रही है, और पृथ्वी पर पहुंचने से पहले ही वह खुद जल जायगा। वस्तुत: वह जलने वाली वस्तु "हीट शील्ड" नही थी, बल्कि उसके रिट्रोराकेट्स के भाग थे। इसलिए ग्लेन सुरक्षित पृथ्वी पर उतरा।

चूंकि इस पुस्तक का प्रयोजन पृथ्वी के वायुमण्डल के विषय में वर्णन करना है, इसलिए अन्तरिक्ष उड़ान की परिस्थितियो, समस्याओ और भयो पर, यद्यपि वे मनोरंजक हैं, विचार नही किया जायगा। परन्तु यह सत्य ही है कि मनुष्य इस विस्तृत, खाली बाह्य अन्तरिक्ष के विषय में कुछ न जान पाता यदि हमारे ग्रह के चारो ओर के वायुमण्डल के विषय मे हम पहले अध्ययन न कर लेते। इसी प्रकार अन्तरिक्ष यात्रा हमें वायुमण्डल के विषय मे बहुत कुछ सिखायेगी और जब हम एक बार अन्तरिक्ष में लम्बे समय के लिए रहने के योग्य हो जाएँगे, तो हम आकाश के विषय में ऐसी बहुत-सी बातों का पता लगा सकेंगे, जिनके अध्ययन को हमारे चारों ओर का वायुमण्डल अब तक रोकता रहा है। हम तारों और उल्काओं के विषय मे अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। और विभिन्न मौसमों के कारणों के विषय में हमें जानकारी मिलेगी, जिसकी सहायता से हम ऐसे तूफानों को रोक सकेंगे जो अन्तरिक्ष में होने वाली ... नों के कारण पृथ्वी पर आते हैं। हम अपनी वायु के रसायन शास्त्र के विषय में

ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे, हम उन परिवर्तनों को भी जान पायेंगे जो सूर्य का प्रकाश उत्पन्न करता है। यह भी ज्ञात हो जायगा कि पृथ्वी किन विधियों द्वारा ऊर्जा का एकत्रीकरण करती है।

यद्यपि अन्तरिक्ष में खोज और अन्वेषण के सतत प्रयत्नों का कारण अधिकतर सैनिक आवश्यकता है, फिर भी यह संभव है कि विज्ञान के इन क्षेत्रों में आविष्कार किसी दिन युद्धों की समाप्ति का कारण बनें, और संसार के समस्त मानव के मिलकर काम करने में सहायक हों। सब लोगों को इसी वायुमण्डल में आवश्यक रूप में साँस लेना है और प्रत्येक स्थान के मनुष्य अपने सिर पर उपस्थित इस छत में आवश्यक रूप से दिलचस्पी लेते हैं। एक बोतल में बन्द दो घातक कीट यद्यपि परस्पर नोचते और काटते हैं तथापि एक दूसरे को घातक डंक मारने से हिचकते हैं क्योंकि प्रत्येक इस बात को जानता है कि दूसरा कीट भी बदले में वैसा ही डंक मार सकता है। इन कीटों की भांति सब मानव प्राणियों में भी जीवित रहने की सहज प्रवृत्ति है। प्रकृति का अध्ययन तथा नियन्त्रण सब राष्ट्रों की सहायता करता है और उसके लिए सब राष्ट्रों के परस्पर सहयोग की आवश्यकता है। अन्तरिक्ष की विजय एक ऐसा कार्य है जिसके लिए समस्त मानव जाति को परस्पर एक हो जाना चाहिये और सबको मिलजुल कर भावी पीढ़ियों के लिए भरसक यत्न जारी रखने चाहियें।
